साहसी राजपूत

(विचित्र सन्यासी का नवीन रूप)

लेखक—

राजकुमार कुणाल, विचित्र योगी, विचित्र मिलन, हैदर अली तथा सप्तसोपान

आदि के

रचयिता

श्रीयुत [illegible]रकाप्रसाद "मौर्य"

बी० ए०, एल० एल० बी०,

प्रकाशक—

चौधरी एण्ड सन्स,

पुस्तक विक्रेता तथा प्रकाशक

बनारस सिटी।

द्वितीय संस्करण | सन् १९३३ | मूल्य १)

प्रकाशक—
चौधरी एण्ड सन्स,
पुस्तक विक्रेता तथा प्रकाशक,
बनारस सिटी।

मुद्रक—
महादेव प्रसाद,
कल्याण प्रेस, बनार

१

व्रत-धारिणी

रात दो पहर से अधिक बीत चुकी थी। चतुर्दशी का चन्द्रमा मध्य आकाश मे विराजमान होकर मानो सारे तारा मंडल पर एकछत्र शासन कर रहा था। उसके पूर्ण मंडल में किंचित् श्वेत किरणें चारो ओर प्रस्फुटित हो होकर दसों दिशाओं में व्याप्त हो रही थीं। दिन भर के काम से थके मांदे गृहस्थ निद्रा देवी की गोद मे पूर्ण सुख का आनन्द ले रहे थे। चारो ओर शान्ति थी, हाँ, कभी कभी गांव के कुत्ते

अनायास ही चौंक कर इस शान्ति को भंग कर देते, परन्तु क्षण भर में ही फिर ज्यों की त्यों निस्तब्धता छा जाती।

इसी समय एक रमणी मन्द मन्द गति से एक सूनसान घने जंगल के बीच होकर जा रही है। उसके शरीर पर का वस्त्र देखने मे श्वेत जान पड़ता है। हाथों मे केवल दो दो चूड़ियो को छोड़ वदन पर और कोई आभूषण नहीं हैं—दाहिने हाथ में एक जल से भरा हुआ लोटा और बायें हाथ में एक घृतपूर्ण दीपक है। दीपक के प्रकाश में उस युवती का मुख-मंडल ऐसा चमक रहा है मानो उस घने जगल रूपी काली निशा के बीच चन्द्रमा। वह रमणी घूम घाम कर वृक्षों को चीरती हुई इस प्रकार जा रही है मानो उसके लिये यह कोई नया मार्ग नहीं है। जान पड़ता है इसके पहले वह कई बार इसी मार्ग से होकर जा चुकी है। लोटे के जल और दीपक के देखने से तो यही बोध होता है कि वह किसी देवता के पूजा की सामग्री है। अस्तु, वह चुपचाप आगे बढ़ती चली जा रही थी कि एकाएक उसके कानों में किसी मनुष्य के कराहने का शब्द सुनाई पड़ा। एक तो सूनसान जंगल दूसरे वह बेचारी अकेली, शब्द के सुनते ही ठिठक कर खड़ी हो गई और लगी चौकन्नी होकर इधर उधर देखने। अब उसके मन मे अनेकानेक भावनाओ का समावेश होने लगा, "इतनी रात को यह मनुष्य यहां क्यों आया, इसके ऊपर कौन सी विपत्ति पड़ी, या मुझे केवल भ्रम तो नहीं हुआ इत्यादि इत्यादि"।

यद्यपि कराहने का शब्द सुनकर किसी मनुष्य के आपत्ति होने की संभावना से पहले तो उसका कोमल हृदय दया से द्रवीभूत हो गया, परन्तु साथ ही साथ प्रेतों की आशंका से उसके शरीर के रोंगटे खड़े हो गये और भय के कारण उसका पैर पृथ्वी से चिपक गया। इतने में फिर वही कराहने का शब्द सुन पड़ा। अबकी वह शब्द पहले की अपेक्षा कुछ स्पष्ट था। ऐसा जान पड़ता था मानो कोई मनुष्य निस्सहाय होकर पृथ्वी पर पड़ा पड़ा अपनी अन्तिम घड़ियों की प्रतीक्षा कर रहा हो और किसी असह्य वेदना के कारण कराह कराह कर इस सूनसान जंगल को भी द्रवीभूत कर रहा हो।

रमणी ने अबकी बार यह निश्चय किया कि अवश्य यह किसी मनुष्य का शब्द है। ऐसी अवस्था में उसने उस मनुष्य की सहायता करना अपना परम कर्तव्य समझा। परन्तु फिर भी ऐसा करने में वह जिस कार्य्य के लिये जा रही थी उसमें बाधा पड़ते देख बड़ी चिन्ता में पड़ गई। जिस काम के पूरा करने के निमित्त वह इस सूनसान जंगल में अकेली आई थी उसे बिना पूरा किये यदि वह उस मनुष्य की सहायता के लिये जाती है तो उसका व्रत भंग होता है और यदि सहायता करने में क्षण भर का भी विलम्ब होता है तो जान पड़ता है वह मनुष्य इस संसार से बिदा हो जायगा। ऐसी दशा में वह बेचारी बड़े असमंजस में पड़ गई। वह न निश्चय कर सकी कि उसे क्या करना चाहिये?

जिस जगह से उसने कराहने का शब्द सुना था वहाँ से वह मन्दिर जिससे वह रमणी पूजार्थ जा रही थी थोड़ी ही दूर पर था। चन्द्रमा की रोशनी मे वह मन्दिर पूर्णतया दृष्टिगोचर हो रहा था। उस चाँदनी निशा मे उस जगल के बीच उस छोटे से मन्दिर की भी विचित्र ही शोभा थी। एक बार मन्दिर की ओर देखकर रमणी ने ज्यों ही चाहा कि पहले चलकर पूजा से निवृत्त हो लें त्यों ही फिर वही कराहने का शब्द सुन पड़ा। उस मार्मिक वेदना के सुनते ही वह युवती पूजा करना भूल गई और झट उसी ओर बढ़ी जिधर से वह शब्द आ रहा था। थोड़ी ही दूर जा कर क्या देखती है कि एक वृक्ष से जकड़ा हुआ एक मनुष्य बँधा खड़ा है। हाथ पैर इस मजबूती के साथ बँधे हुये है कि वह बेचारा मूर्ति की भाँति ज्यो का त्यो स्थिर है। गला बँधा होने के कारण उसका दम घुट रहा है। जो कुछ साँस वाकी बची है वही धीरे २ निकल कर उसके हृदय की मार्मिक पीड़ा प्रकट कर रही है।

यह देखते ही वह बेचारी स्तम्भित हो गई। ऐसा करुणा-पूर्ण दृश्य तो उसने कभी स्वप्न मे भी न देखा था। विलम्ब करना उचित न समझ उसने झट दीपक और जल का लोटा पृथ्वी पर रख दिया और वृक्ष के पास पहुँच कर अपने कार्य्य मे संलग्न हो गई। बड़ी कठिनाई के साथ उसने प्रत्येक बंधनो को ढीला किया।

जिस समय वह रमणी उस आवद्ध पुरुष के बंधनों को

ढीला कर रही थी उस समय उसने क्या देखा कि वह अवस्था मे बीस वर्ष से अधिक न था। सुन्दर गौर वर्ण, आयत नेत्र-युग और प्रशस्त लिलाट के देखने से वह कोइ वीर क्षत्री जान पड़ता था। इस दशा मे भी तलवार की म्यान उसकी कमर से लटक रही थी। बँधनो को ढीला करते करते वह उस युवक की सुन्दर मुखाकृति पर मुग्ध हो गई।

बंधन मुक्त हो जाने पर उस युवक ने एक बार खींच कर सांस ली और फिर पृथ्वी पर बैठ गया। कुछ क्षण के पश्चात् उसके मुखसे केवल एक शब्द निकला "पानी"। युवती ने यह जानकर कि प्यास के कारण उसका कंठ सूख रहा है चाहा कि लोटे के जल से उसकी पिपासा को शान्त करे परन्तु यह समझ कर कि देवता के निमित्त लाये हुये जल को किस प्रकार मनुष्य को अर्पण करूँ वह ज्यो की त्यो खड़ा खड़ी इसी सोच विचार मे रहगई। युवक ने फिर कहा "पानी"। अब फिर वही शब्द सुनकर उस युवती से न रहा गया। उसने अपने मन मे कहा कि यह उस पूजा से भी गुरुतर पूजा है और झट जहाँ उसने लोटे का जल रक्खा था वहाँ जा लोटा उठा लाई और युवक के ओंठो से लगा दिया। जल के पीते ही वह युवक मानो जी उठा और लगा कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से एकटक उसी युवती की ओर देखने। कुछ क्षण तक दोनों इसी प्रकार एक दूसरे को देखते रहे, किसी के मुँह से एक शब्द भी न निकलता था।

अन्त मे युवक ने शांति भंग करते हुये कहा,—"आश्चर्य !

हे देवि ! तुम कौन हो जो इस विपत्ति में मेरी सहायता के लिये आई हो ?'

रमणी ने कहा,—"मैं इसी मार्ग से श्री महादेव जी की के निमित्त जा रही थी, अकस्मात् तुम्हारे कराहने का शब्द सुन-कर इधर आई तो क्या देखा कि तुम इस वृक्ष से बंधे खड़े हो। मेरा इस जंगल में आना इतने आश्चर्य की बात नहीं है जितना तुम्हारा इस वृक्ष से बंधा होना। हे वीर ! तुम्हारा परिचय सुनने के लिये मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है।"

युवक ने कहा,—"सुन्दरी ! अवश्य तू कोई देवी है जो मेरी रक्षा के लिये आकाश से पृथ्वी पर अवतीर्ण हुई है नहीं तो कहाँ यह सूनसान जंगल और कहाँ इस आधी रात की बेला मे तुम्हारा इस निर्जन प्रदेश में पदार्पण। देवि ! इस भव्य मूर्ति का दर्शन देकर तुमने मुझे कृतार्थ किया। अब यदि मेरा प्राण पखेरू इस शरीर को छोड़ भी दे जैसा कि अब से एक क्षण पहले हो ही चुका था तो भी मुझे कोई चिन्ता नहीं। और यदि तू कोई स्त्री है तो आजतक मैंने ऐसी सुन्दरी इस पृथ्वी पर नहीं देखी थी। तुम्हारे लिये कृतज्ञता प्रकट करना भी केवल अपनी हंसी कराना है। यदि जन्म जन्मान्तर तुम्हारा दास होकर रहूँ तो भी तुम्हारे इस उपकार का बदला चुकाना मेरे लिये असंभव है।

रमणी ने कहा—सब की रक्षा करने वाला परमात्मा है मैंने तो केवल अपने कर्त्तव्य का पालन किया है, कार्य करने का

समय बार बार नहीं आता और अवसर पर का चूका मनुष्य जन्म भर पछताता है परन्तु फिर उसे वह अवसर नहीं मिलता। मुझे तो इसी मे संतोष है कि मैंने अपना कार्य्य किया। अब तुम्हारा परिचय सुनना चाहती हूँ। तुम्हें इस विपत्ति से मुक्त कर मुझे जो संतोष और आनन्द आज हुआ ऐसा जन्म भर मे और कभी नहीं हुआ था।

युवक ने कहा—मेरा शरीर घावों से बिध गया है और इन घावों के कारण मुझे असह्य वेदना हो रही है, पहले मुझे किसी सुरक्षित स्थान पर ले चल कर थोड़ा विश्राम लेने दो तदनन्तर मुझ अभागे से जो कुछ पूछो सब कहने के लिये तैयार हूँ।

उस युवती ने यह सुनकर जो ध्यान से देखा तो उस युवक के शरीर पर कई जगह घावों के चिन्ह दीख पड़े। इसके पहले उसने यह नहीं देखा था कि शरीर मे घाव भी लगे थे। अब उसने अनुमान से यह समझा कि अवश्य इस वीर को कुछ दुष्टों के साथ अकेले संग्राम करना पड़ा है। उसने तुरन्त बचे हुये जल से उन घावों को धोया और अपने अंचल से वस्त्र फाड़ जितने को बांध सकी उन पर पट्टी बांधा।

इस कार्य से निवृत्त होकर उसने युवक को हाथ का सहारा देकर खड़ा किया और चाहा कि अपनी कुटी पर ले चले परन्तु वेदना के कारण उस युवक को एक पग भी चलना दूभर था। अब तो वह बेचारी बड़ी कठिनाई में पड़ गई। वहां

रहने पर कोई दूसरी विपत्ति न शिर पर आ पड़े इस विचार से वह और भी घबड़ाई। अन्त मे उसने यह निश्चय किया कि युवक को थोड़ी देर के लिये वहीं छोड़ दे और घर जाकर अपनी माता से सारा हाल कहे। युवक ने भी उसके इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया।

उस युवक को उसी स्थान पर छोड़ वह युवती अभी थोड़ी ही दूर गई थी कि एका एक वायु का वेग बढ़ चला। क्षण भर मे आकाश के मेघावृत्त हो जाने के कारण चन्द्रमा छिप गया, चारो ओर कालिमा फैल गई और मार्ग का मिलना कठिन हो गया। वायु का वेग बढ़ता ही गया। बादलो की गड़गड़ाहट और वृक्षो की हरहराहट से वह जगल अत्यंत भयावना हो गया।

वह बेचारी ज्यो त्यो कुछ दूर तक तो अपने मार्ग पर गई परन्तु अन्त को मार्ग छूट गया और लगी जंगल मे भटकने। एक तो घर पहुँचने मे विलम्ब और दूसरे युवक को शीघ्र सहायता देने की उत्सुकता, इन्हीं विचारो के कारण वह जल्दी २ दिशा का अनुमान करती हुई आगे बढ़ती चली गई। परन्तु एक बार का भूला मार्ग फिर मिलना कठिन हो गया। इस प्रकार वह बेचारी तीन चार घटे तक भटकती रही और भटकते भटकते बहुत दूर निकल गई।

बड़ी कठिनाई के बाद जब वह जंगल के बाहर हुई तो क्या देखा कि सवेरा हो चला है। उसे यह पता न था कि वह कहाँ

है और उसका घर वहां से किस ओर और कितनी दूर है। वह यह न निश्चय कर सकी कि उसे किधर जाना चाहिये। अन्त में बिना किसी ध्येय के ही एक ओर को चलने लगी।

अभी थोड़ी ही दूर गई थी कि दो मनुष्यों ने उसे आकर घेर लिया। देखने में ये दोनों मुसलमान जान पड़ते थे। युवती ने देखा कि इनके साथ बहुत सी गायें थीं जिनकी आंखों से आँसू बह रहे थे। ये बेचारी भय के मारे इस प्रकार कांप रही थी मानो यमराज इनके सामने खड़े हों। कितनो की तो डंडो की चोट खाते खाते पीठ का चमड़ा उधड़ गया था। कितनी बेचारी लगँड़ाती हुई चल रही थी एक दूसरी की ओर सतृष्ण नेत्रों से देखती जाती थी। इनको क्षुधा और प्यास का तो कोई पूछने ही वाला न था। यदि कभी भूल से चारा चुँगने के लिये कोई गाय भूमि पर मुंह लगाती तब तक पीठ पर निर्दई डंडा आ बैठता।

युवती ने चट समझ लिया कि ये कसाई है। उसने चाहा कि किसी तरह भाग कर इनसे अपनी रक्षा करे परन्तु वह भागना ही चाहती थी कि उनमे से एक ने उसे पकड़ लिया। उसने पहले तो छुड़ाने का प्रयत्न किया परन्तु जब देखा कि उस यमराज के आगे उसका कोई वस नहीं चलता है तो लगी प्रार्थना करने। बहुत दादा, भैया, कहने के पश्चात् भी जब उन्हे दया न आई तो चुप रह जाना ही उचित समझा। उसने आंख उठाकर उन गायो की ओर देखा और फिर हृदय मे कहा—गो

२

गो-रक्षा

राय गंगासिंह चदेल वंशीय राजाओं के वंशज हैं। यद्यपि अंग्रेजी राज्य में इनकी अमलदारी का बहुत बड़ा भाग छिन गया है तौ भी अभी एक बहुत बड़ी जमींदारी के मालिक हैं। रायपुर जिले के अंतर्गत विश्रामपुर में अभी इनकी कोठी वैसी ही मजबूत और सुदृढ़ बनी है जैसी पहले थी। अभी भी इनका सरकार के यहां बहुत बड़ा मान है।

इनके उत्तम प्रबंध और इनकी सुव्यवस्था से प्रजा इनसे

बहुत संतुष्ट रहती है। अपने धर्म की रक्षा और देश के कार्यों में भी इनका बहुत बडा भाग रहता है। आमदनी का अधिक अंश दीन और दुखियो की सहायता में ही खर्च होता है। दरिद्रो को देख कर जितना ही ये दया से द्रवीभूत होते हैं उतने ही दुष्ट और पापियों को देखकर निर्दयी भी बन जाते है।

घर मे इनकी स्त्री और एक पुत्री को छोड़ दूसरा कोई नहीं है। स्त्री का नाम है सुरुचि और पुत्री का शीलावती। एक पुत्र भी हुआ था। परन्तु वह पाँच ही वर्ष की अवस्था में घर से ला पता हो गया। लोगो की धारणा थी कि वह नदी मे डूब कर मर गया परन्तु किसी ने डूबते हुये देखा न था। माता ने मरा जान कर लड़के का पता लगाना भी छोड़ दिया। पुत्री शीलावती के पश्चात सुरुचि को और कोई संतान न हुई। माता पिता की इकलौती पुत्री शीलावती सर्व गुण सम्पन्न और रूप की खानि हुई। पिता गंगासिह का तो उस पर पुत्र से भी अधिक स्नेह था।

राय गंगासिह ने सरकार की समय २ पर जो सहायता की है उसके लिये सरकार को कृतज्ञ होना चाहिये। उन्हो ने अपनी राजभक्ति का कई अवसरो पर पूरा परिचय दिया है। अभी गत महायुद्ध में धन जन से उन्होंने जिस प्रकार अपने अकाटच परिश्रम द्वारा सरकार को मदद पहुँचाई थी वह कम न थी परन्तु उसके बदले मे सरकार ने उन्हें केवल दो अक्षर अर्थात् राय की पदवी से विभषित कर दिया। राय साहब को

तो अपने कर्तव्य में ही संतोष था। इस पदवी को पाकर उन्हें कोई विशेष प्रसन्नता न हुई।

यद्यपि राय बाबू सरकार की राजभक्त प्रजा होने में ही अपना गौरव समझते हैं परंतु सरकार के पक्षपात और अन्याय सहन करने में वे सर्वथा असमर्थ हैं। उनका कहना है कि जब तक सरकार हम पर न्याय की दृष्टि रखती है तब तक वह हमारे लिये सब कुछ है परन्तु जहां वह अन्याय करती है, जहाँ हमारे स्वत्वों को हमसे छीनती है और जहाँ पक्षपात करती है वहां वह सरकार न तो हमारी सरकार है और न हम उसकी प्रजा। यही कारण है कि सरकार भी हमारे राय गंगासिंह पर यदि एक आंख मित्र भाव की रखती है तो दूसरी उनके निरीक्षण की।

मुसलमानों का बकरा ईद त्योहार निकट था। यह त्योहार और कुछ नहीं केवल कुर्बानी का त्योहार है। इसी अवसर पर मुसलमान उन्हीं गायों के गले पर जिनको हिन्दू गोमाता कहते हैं छुरी फेरते हैं और वही उनकी कुर्बानी होती है। आज के दिन एक नहीं हजारों और लाखों गायें कटती हैं। प्रत्येक मुसलमान कुर्बानी करना अपना धार्मिक कर्तव्य समझता है। जिस पवित्र भूमि में एक हिन्दू पुत्र प्राण देकर भी गोरक्षा करना अपना धर्म समझता था उसी भूमि पर मुसलमान आज गायों की कुर्बानी द्वारा अपने धर्म की मर्यादा बढ़ाते हैं। समय की गति भी विचित्र है। अस्तु,

मुसलमानों ने गायों को इकट्ठा करना आरम्भ कर दिया। भेप बदल बदल कर गाय खरीदने के लिये वे हजारों की संख्या में घूमने लगे। भोले भाले हिन्दुओं ने भी उन यज्ञोपवीतधारी हिन्दू वेषीय मुसलमानो के धोखे मे पड़कर अपनी प्राण से प्यारी गौओं को उनके हाथों बेच दीं। धीरे २ उनका त्योहार भी आ गया।

विश्रामपुर के पास भी मुसलमानों की एक बहुत बड़ी बस्ती है। बकरा-ईद के अवसर पर यहां के मुसलमानो ने भी कुर्बानी करने का निश्चय किया है। जिन हिन्दू वीरों की नसो मे कुछ भी पूर्वजों का रक्त बाकी है वे भला कब अपनी प्यारी गो माताओं का रक्त राक्षसो द्वारा पान किये जाते देख चुप रह सकते हैं। यही कारण है कि पिछले वर्ष में इसी त्योहार के अवसर पर कई जगह हत्याकाण्ड भी हो चुके थे। सरकार की नीति कुछ समझ मे नही आती। इतने उपद्रवों के होते हुये भी सरकार ने कुर्बानी के बन्द करने का कोई प्रयत्न नहीं किया वरन् यह घोषणा करदी कि कोई हिन्दू उनके धार्मिक कार्य मे बाधा न डाले अन्यथा वह दण्ड का भागी होगा। सरकार की नीति ने हिन्दुओं मे खलबली मचा दी परन्तु फिर भी सरकार अपनी ही इच्छा के अनुकूल कार्य करती रही। इस साल भी सरकार की ओर से यही घोषणा हुई कि हिन्दू मुसलमानों की कुर्बानी में दखल न दें।

बिश्रामपुर और अन्य गावों मे भी जिला कलक्टर की ओर

से यह हुक्म जारी किया गया कि कोई हिन्दू बकराईद के दिन घर से बाहर न निकले। जो कोई इस आज्ञा को भंग करेगा गोली से मार दिया जायगा। घोषणा के प्रकाशित होते ही हिंदुओं में सनसनी फैल गई। भला हमारे राय गंगासिंह को सरकार की यह नीति और यह न्याय कब पसंद होता। उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि प्राण रहे या न रहे गोमाता की रक्षा अवश्य करूँगा। इन राक्षसों के हाथो से गायो के गले पर छुरी फिरने के पहले राक्षसो के रक्त का स्वयम् पान करूंगा। उन्होंने अपना यह सन्देश गुप्त रीति से अपनी सारी प्रजा और आस पास के गावों मे भेज दिया। सारे हिन्दू एक स्वर से गो माता की जय मनाने लगे।

आजही त्योहार का दिन है। इधर मुसलमान कुर्बानी के लिये छुरियां टेने लगे उधर हिन्दू भी अपने अपने घरों में गँड़ासे तैय्यार करने लगे। गायें भी आसुओं की धारा बहाते हुये मृत्यु का समय देखने लगी। उनके हृदय से यही पुकार उठने लगी कि हे कृष्ण! हमने कौनसा अपराध किया जो आज इस दशा को प्राप्त हुई। हाय? कोई हिन्दू वीर क्या हमारे दूध की लाज रखने वाला नहीं है।

सरकार की ओर से इतना ही नही बल्कि हथियारबंद पुलिस भी तैनात कर दी गई। पुलिस के सिपाही लगे एक सिरे से दूसरे सिरे तक चक्कर देने लगे। उसी में कितने हिन्दू भी सरकारी नमक को अदा करनेके लिये हिंदुओं पर निशाना लगाने के लिये तैनात थे।

सरकार की सहायता पर मुसलमान भी प्रसन्न चित्त होकर अपने त्योहार को निर्विघ्न मनाने की खुशी मे उछलने कूदने लगे । धीरे धीरे समय आ पहुँचा । गायें खूटों से खोली जाने लगीं, उनके गले से रस्सियाँ भी निकाल ली गईं परन्तु कोई हिन्दू अभी तक उनकी रक्षा के लिये देख न पड़ा । इधर मुसलमानों ने समझा कि बस, अब तो बाजी मार लिया । पुलिस के सिपाही भी समझने लगे कि भला हम लोगों की किसी किस्म की बदनामी नहीं हुई । बस, गायें एक एक करके वध स्थान पर लाई जाने लगी । इधर तो यह हो रहा था उधर हिन्दू भी सो नहीं रहे थे, सब के सब इसी अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे । फिर क्या था, एक साथ ही हिन्दुओं ने "जय गोमाता" की उच्च घोष से आकाश गुँजा दिया । आगे आगे हाथ मे तलवार लिये राय गंगासिंह और उनके पीछे हजारों की संख्या मे हिन्दू गँड़ासे और भाले लिये घटना स्थल पर आ डटे । पुलिस वालों की भी देखते ही नानी मर गई । जो सामने पड़ा कि बस, उसका काम तमाम । जो जिधर भागा वह उधर ही, मैदान साफ़ हो गया । घास की भाँति मुसलमानों को काटते हुये हिन्दुओं ने मानो फागुन की फाग खेलना प्रारम्भ कर दिया । बकरीद के त्योहार पर विश्रामपुर के राय गंगासिंह ने भी मुसलमानों की कुर्बानी मनाई । अपनी तलवार से उन्होंने आज जितने मुसलमानों की कुर्बानी की उतनी तो शायद किसी मुसलमान ने अपने जन्म

भर में भी न की हो। गौओं के खून के बदले आज उनके घातक राक्षसों का ही खून बह चला। अब तो जो जिधर ही भागा वह उधर ही। सबको अपने प्राणों की चिन्ता हुई और सारी कुर्बानी रफू चक्कर हो गई।

गाये भी सतृष्ण नेत्रों से अपने रक्षकों को अशीर्वाद देने लगीं। हिन्दुओं ने इस अवसर को हाथ से जाने देना उचित न समझा और जहां तक जिससे बन पड़ा वहाँ तक लूट पाट भी की। राय गंगासिंह ने स्त्रियो पर हाथ उठाना गाय पर हाथ उठाने के समान ही पाप कर्म बताकर लोगों को इस अमानुषिक कार्य्य के करने से रोक दिया था यही कारण था कि किसी हिन्दू ने किसी मुसलमान स्त्री का वस्त्र तक भी न छूआ। तत्पश्चात् अपने अपने लूट का माल और गायो को लेकर हिन्दू अपने अपने घर चले गये। रायसाहब भी अपनी कोठी में आये और अपनी सफलता पर प्रसन्न होने लगे।

इधर तो मुसलमानो का पैशाचिक यज्ञ-विध्वंस और इधर बात की बात मे हवा के साथ सरकारी कर्मचारियों के कानों में यह समाचार, फिर क्या था कलक्टर ने हिन्दूओं को पकड़वाने की आज्ञा घोषित की। और जगहों से भी पुलिस बुलाई गई। विश्रामपुर के घर घर के हिन्दू जवान और बूढ़े बच्चे सब कैद किये जाने लगे। राय गंगासिंह की सरकार ने बहुत खोज करवाई परन्तु उनका कुछ पता न चला। जब बहुत छान-बीन के पश्चात भी रायसाहब न मिले तो समाचार पत्रों में इस बात

३

अभागिनी

जब उस युवती को गये बहुत देर हुई तो वह आहत युवक बड़ी चिन्ता में पड़ गया। अनेकानेक भावनायें उसके हृदय में उठने लगीं। वह सुन्दरी कौन थी। उसका इस सूनसान जंगल में इतनी रात को आने का क्या प्रयोजन? आने का वचन देकर भी वह क्यों नहीं आई? इत्यादि! उसका चित्त अनेक आशंकाओं से भर गया। कभी वह अपनी दीन दशा पर सोचता और कभी उस सुन्दरी के रूप को आलोचना करता।

कैसे विशाल नेत्र थे, कैसा चन्द्रमा के समान मुखमंडल था, कैसा यौवन का विकाश था, कैसी भोली भाली चितवन थी । जिस समय आकाश मे बादल छाने लगा और वायु का वेग बढ़ने लगा उस समय उसे यही चिन्ता हुई कि कहीं वह सुन्दरी अपना मार्ग न भूल जाय और फिर अपने ही को कोसने लगता, फिर सोचने लगता, अवश्य वह कोई देवी थी जो उसकी रक्षा के हेतु आई थी और फिर अन्तर्ध्यान हो गई। इसी प्रकार वह घण्टों इसी उधेड़ बुन मे लगा रहा।

जब हवा जोर से बहने लगी और सारा आकाश मेघ से भर गया तो उस युवक का हृदय भी भयभीत हो उठा। क्षण क्षण इस बात का भय बढ़ने लगा कि कहीं कोई वृक्ष या वृक्ष की शाख टूट कर उसके ऊपर न गिर पड़े और उसकी जीवन लीला वहीं समाप्त हो जाय। यह सोचकर कि शायद उस ओर जिधर वह युवती गई है जगल थोड़ा ही हो उसने किसी-किसी भाँति उसी ओर जाने का निश्चय किया। ज्यो ज्यो बिजली चमकती त्यो-त्यो उसी प्रकाश में वह वृक्षों को बचाता हुआ थोड़ा-थोड़ा जिस किसी भाँति धीरे-धीरे खिसकने लगा। आशा भी धन्य है। जंगल से बाहर होने की आशा पर वह आहत युवक जिसे सहारा देकर भी एक कदम आगे ले चलना असंभव था निराश्रित होते हुये भी आगे बढ़ने लगा। अन्त मे उसे बिजली की चकाचौंध के साथ श्री महादेव जी का वही छोटा सा मंदिर देख पड़ा जहाँ वह युवती पूजा के निमित्त जा रही

थी। यह देखकर उसे ढाढ़स हुआ, सोचा उसी मंदिर में चलकर वायु के इस झोंके से अपनी रक्षा करें। यह सोच कर उसी प्रकार खिसकता हुआ वह मन्दिर के निकट जा पहुँचा। ज्यों ही वह मन्दिर के भीतर घुसने के लिये पैर उठाने लगा कि एकाएक वर्षा का आरम्भ हो गया। मन्दिर में पहुँच कर उसने श्री महादेव जी का ध्यान किया और आश्रय पाकर मन ही मन परमात्मा को धन्यवाद दिया।

धीरे धीरे पूर्व दिशा में लालिमा फैलने लगी। उषा देवी की उस सुन्दरता को देख मारे लज्जा के कालिमा अपना मुँह छिपाने लगी। आकाश के तारे भी यह देख खिन्न होने लगे। चन्द्रमा भी तेजहीन हो गया। ऐसा जान पड़ने लगा मानो कोई नट नया अभिनय करने की तैय्यारी कर रहा हो।

लालिमा बढ़ने लगी और साथ ही पृथ्वी पर प्रकाश भी फैलने लगा। इतने में भगवान अंशुमाली ने अपने लाल मंडल का दर्शन दिया। मारे प्रसन्नता के पक्षीगण कलरव से उनकी स्तुति गान करने लगे। जंगली जानवर कन्दराओं में उसी प्रकार अपना मुँह छिपाने लगे जिस प्रकार प्रतापी राजा के राज्य में चोर और डाकू। हरिनों के झुन्ड अब निर्भय हो होकर चौकड़ी भरने लगे। केवल शहरों के रहने वाले कुछ आलसी मनुष्यों को छोड़ सब ने उस प्रातःकालीन सूर्य्य का दर्शन किया। उस समय के सुरभित समीर का आनन्द जिस प्राणी ने न लिया और जिसने प्रकृति की उस मधुर छवि, उषा की वह मधुर मुसुकान

निशा के साथ प्रकाश का वह मधुर सम्मिलन और बालसूर्य्य की उस मधुर आभा का अवलोकन न किया वह प्राणी इस संसार मे व्यर्थ पैदा हुआ। अस्तु !

हमारे उस युवक ने भी धीरे धीरे मन्दिर से बाहर निकल कर पूर्व दिशा विमुख हो माथा नवाया और लगा एक टक उसी छवि को देखने। कुछ क्षण के पश्चात प्रकाश फैल गया। पानी का बरसना और वायु का वेग से बहना बहुत पहले ही बन्द हो चुका था। अब प्रकाश के फैलते ही मानो उसका सारा भय जाता रहा। निश्चय किया कि किसी बस्ती मे चल कर आश्रय लें। इस विचार से कि संभव है वह युवती जिसने उसकी प्राणरक्षा की थी पास ही के किसी गाँव में रहती हो वह आहत युवक धीरे २ उसी ओर को चलने लगा जिधर उसने उसे जाते देखा था। एक एक पग पर यही सोचता जाता की वह युवती पानी और हवा के कारण रात मे न आ सकी होगी अब अवश्य उसकी सहायता के लिये आती ही होगी। एक बार फिर वह उसी युवती के उस लावण्यपूर्ण मुखमंडल को देखने के लिये व्याकुल हो उठा।

बड़ी कठिनाई के बाद कुछ दूर चलने पर उसे पेड़ो के बीच से बस्तियो की झलक दिखाई पड़ी। यह देख उसका साहस कुछ बढ़ा और उसने दुगुने उत्साह के साथ चलना प्रारम्भ किया। अन्त मे वह उस जगल से बाहर हुआ। फिर तो उसे पास ही मे एक बस्ती दिखाई पड़ी। निश्चित होकी

अब उसने वहीं थोड़ा विश्राम किया। इतने में सूर्य्य भी मध्य आकाश में जा पहुँचा। धूप तेज होगई। पावों की पीड़ा और भूख के कारण व्याकुल हमारा वह युवक अब प्यास के कारण और भी व्याकुल होने लगा। जिस सुन्दरी ने उसे रात्रि मे जल देकर उसकी प्राण रक्षा की थी उसकी चिन्ता उसके हृदय को और भी व्यथित करने लगी। अनुमान से उसने यह निश्चय किया कि अवश्य वह इसी गाँव की रहने वाली होगी। एक तो भूख और प्यास की आकुलता दूसरे उस सुन्दरी के दर्शन की लालसा से हमारा वह आहत वीर हिम्मत करके एक बार फिर उठा और एक लकड़ी के सहारे जिसे उसने जंगल मे से तोड़ ली थी आगे बढ़ा।

कुछ दूर गिरते पड़ते चलने के बाद उसके मन मे एकाएक यह प्रश्न उठा कि यदि वह सुन्दरी किसी दूसरे मार्ग से उस स्थान पर जहाँ वह पेड़ से बँधा खडा था गई हो तो वहाँ किसी को न पाकर वह बेचारी क्या सोचेगी? ऐसा न हो कि मेरी ही खोज मे जंगल जंगल भटक रही हो। इन विचारो के उठते ही वह और भी बड़बड़ाने लगा। परन्तु अब लौटकर फिर उस स्थान पर जाना उसके लिये असंभव था। यह सोच कर कि यदि उसका लौटकर जाना निष्फल हुआ तो वह किसी ओर का न होगा वह फिर आगे बढ़ा। कुछ दूर चलने पर उसे एक स्त्री दिखाई पड़ी। स्त्री को देखते ही उसने सोचा हो न हो यह वही सुन्दरी हो जिसने उसे रात मे देखा था।

परन्तु उसके मलीन वस्त्र को देखकर उसके हृदय में संदेह पैदा होने लगा। वे वस्त्र जिन्हें उसने रात मे देखे थे चन्द्रमा की चाँदनी से कम स्वच्छ न थे। जब उसने देखा कि वह स्त्री घूम घूम कर लकड़ियाँ इकट्ठी कर रही है तो उसका संदेह दूर हो गया। उसने निश्चय कर लिया कि यह कोई दूसरी स्त्री है जो साथ ही साथ अति दरिद्र भी है।

जिस प्रकार अथाह सागर मे डूबते हुये को एक तिनके का सहारा भी बहुत है उसी प्रकार उस युवक के लिये भी डूबते हुये से बचने के लिये सहारा पाने की आशा दिखाई पड़ी। धीरे धीरे वह उस स्थान पर जा पहुँचा जहाँ वह स्त्री अपने लकड़ियों के इकट्ठा करने के कार्य्य मे संलग्न थी।

युवक ने पास पहुँच कर क्या देखा कि उस स्त्री की अवस्था भी अभी सोलह वर्ष से अधिक न थी। देखने से मालूम होता था कि किसी समय वह भी खिले हुये गुलाब के पुष्प-समान सुन्दर रही होगी। परन्तु उसका मुरझाया चेहरा मानो अब उसके ऊपर किसी भारी विपत्ति के आ पड़ने की सूचना दे रही है। शरीर पर न तो कोई भूषण है और न किसी प्रकार के साज और शृंगार ही दृष्टिगोचर होते है। उसके मलीन मुखाकृति के ऊपर निषाद की गहरी छाया की झलक देख पड़ रही है। जान पड़ता है आपत्ति के कारण ही वह बेचारी घूम २ कर लकड़ियाँ इकट्ठी कर रही है। उसकी यह दशा को देख युवक अपनी दशा को भी भूलकर मन ही मन उस पर

दया प्रकट करने लगा। फिर उसने उस स्त्री को संबोधित करते हुये कहा—इस धूप में मेरे घावों की पीड़ा बढ़ती जा रही है भूख और प्यास के कारण प्राण कंठ को लग रहा है। मेरी विपत्ति का कोई ठिकाना नहीं है। तुम्हें देखकर जान में जान आई। बहिन! यदि मेरी कुछ सहायता कर सको तो मैं तेरा बड़ा उपकार मानूँ।

स्त्री ने कहा—भैया! मेरे पास यहाँ क्या धरा है जो तुम्हें खाने और पीने को दूँ। अभी मेरी लकड़ियों का गट्ठर भी नहीं पूरा हुआ कि तुम्हें लेकर घर चलूँ। तुम्हें देखकर मुझे दया आ रही है परन्तु क्या करूँ यदि बिना कार्य पूरा किये चलती हूँ तो घर में एक के सौ सुनने पडेगें। तुम्हें इस दशा में देखकर मुझ से कुछ कहा नहीं जाता।

युवक ने कहा—बहिन! विलम्ब करने पर तो मेरा जीवित रहना भी कठिन हो जायगा। इस समय परमात्मा ने मुझे तुम्हारी ही शरण में भेजा है अब तुम्हें जो उचित जान पड़े करो।

रमणी ने कहा—मैं तो तुम्हारी लिये सब कुछ करने को तैयार हूँ परन्तु मुझ अभागिनी के लिये अच्छे रास्ते पर चलने में भी बड़े बड़े भारी कष्ट कांटे हैं। तुम्हारी इस दशा को देखकर मेरा हृदय दया से भर गया है। मैं तुम्हारी हर प्रकार से सेवा करने के लिये भी तैय्यार हूँ। परन्तु जहाँ घर में मुझे वैसे ही सैकड़ों गालियाँ नित्य मिलती हैं वहाँ फिर न जाने मेरी क्या दशा होगी।

युवक ने कहा—इस समय तो तुम मेरी सहायता करो फिर आगे परमात्मा मुझे जहाँ ले जायगा वहाँ जाऊँगा।

स्त्री ने अपने करुणापूर्ण नेत्रों मे आँसू भरकर कहा—भाई तुम्हार दुख मुझसे देखा नही जाता। तुम्हारे इन घावो को देखकर तो हृदय और भी टुकड़े हो रहा है। चलो मै तुम्हें अपने साथ लेकर चलती हूँ। फिर जो शिर पर पड़ेगा उसे देखूँगी।

इतना कहकर वह स्त्री लकड़ी का गट्ठर ले उस युवक को हाथ का सहारा देती हुई गाँव की ओर चली।

४

फातिमा और शीलावती

हम यह ऊपर लिख चुके है कि राय गंगासिंह को सरकार ने गिरफ्तार करना चाहा परन्तु वे एकाएक घर से ऐसे लापता होगये कि उनका मिलना कठिन हो गया। लाख उपाय करने पर भी किसी को उनका पता न चला। उनके गायब होने पर उनकी स्त्री और उनकी पुत्री का भी अब सरकार के भय से कोई आश्रय-दाता न था। सच है विपत्ति मे कोई किसी की सहायता नहीं करता। माता और पुत्री अपने दो नौकरों के साथ

उस विशाल भवन में किसी भाँति कालयापन करने लगीं।

कुछ दिनों तक तो सुरुचि को यह आशा थी कि उसके पति का समय समय पर दर्शन होगा परन्तु जब पाँच छः महीने बीत जाने पर भी उसे राय साहब का दर्शन न हुआ तो वह बेचारी बड़ी चिन्ता में पड़ गई। शोक के कारण उसे वह अट्टालिका स्मशान के समान दिखाई पड़ने लगी। जो कुछ गृहस्थी का कार बार था वह भी धीरे २ चौपट होने लगा। नौकर चाकर भी धीरे धीरे किनारा खींचने लगे। यहाँ तक कि वही विशाल भवन जो राय साहब के समय मे हर समय अपनी जगमगाहट से देखनेवालों को चकाचौंध करता था उनकी अनुपस्थिति मे भूत खाना बन गया।

इस समय शीलावती की अवस्था लगभग सोलह वर्ष थी। पिता के अदृश्य हो जाने के कारण वह बेचारी भी सूखकर काँटा हो गई। उसका वह गुलाबी चेहरा शोक के कारण मुर्झा गया। धर्म के कार्य्य में हाथ बँटाने के कारण जिस प्रकार सरकार ने कितने और घरों को वीरान कर दिया उसी प्रकार हमारे राय गंगासिंह का वह विशाल भवन भी उजाड़ हो गया।

एक तो सुरुचि को सबसे बड़ी चिन्ता इस बात की थी कि उसके पति पर न जाने कौन सी आपत्ति पड़ती होगी, वे न जाने किस दशा में होंगे जीवित होंगे या नहीं दूसरे शीलावती की अवस्था अब ब्याह के योग्य हो गई थी। बेचारी

रात दिन बैठे बैठे इसी चिन्ता में अपना सारा समय बिताती। पुत्री शीलावती के बहुत आग्रह करने पर स्नान और भोजन करती। शीलावती माता की इस दशा को देख देखकर और भी दुखी होने लगी।

विपत्ति में ही विपत्ति आती है। मुसलमानों के हृदय में राय गंगासिंह के प्रति जो द्वेष की आग भड़क उठी थी वह कम होने की अपेक्षा दिन पर दिन और भी भीषण रूप धारण कर रही थी। पहले तो मुसलमानों को इस बात की आशा थी कि राय साहब सरकार द्वारा गिरफ्तार होकर दण्ड के भागी होंगे और इस कार्य्य में बहुत से मुसलमानों ने सरकार की सहायता के लिये जी खोलकर परिश्रम भी किया परन्तु जब उनका सारा प्रयत्न निष्फल हुआ तो उन्होंने अमानुषिक कार्य द्वारा ही अपने प्रतिकार के शोध का निश्चय किया। बकराईद के त्यौहार पर उनकी जो दुर्दशा हुई थी उसके बदले मे उन्होंने राय साहब की स्त्री और लड़की की ही प्रतिष्ठा भंग करने का आपस मे परामर्श किया।

मुहम्मद हुसेन खां यद्यपि आलिम फाजिल थे परन्तु मुसल-मानी मजहब के कट्टर पक्षपाती थे। यही कारण था कि विश्रामपुर के आस पास के सारे मुसलमानो ने उन्हें अपना अगुआ मान लिया था। जो कुछ वहां के मुसलमान करते सब उन्हीं की राय से करते। बकराईद के अवसर पर कुर्बानी भी उन्हीं की आज्ञा से हुआ करती थी, यदि वे चाहते तो कुर्बानी

बन्द हो सकती थी परन्तु इसे तो वे अपना धार्मिक उत्सव समझते थे फिर बन्द कैसे करते ?

केवल इसी धार्मिक झगड़े को छोड़ राय साहब और मुहम्मद हुसेनखां मे कभी किसी प्रकार का विद्रोह नहीं खड़ा हुआ था वरन् दोनों में आपस मे मेलजोल था। कितने ही अवसरों पर तो दोनों आपस में बहुत से दूसरे विषयों पर परामर्श भी करते थे। समय समय पर एक ने दूसरे की मदद भी की थी। परन्तु केवल इसी एक धार्मिक झगड़े ने सारे मेलजोल को मिट्टी मे मिला दिया। वही मुहम्मद हुसेनखाँ इस समय रायसाहब के जानी दुश्मन थे। आज इन्हींने इस बात के लिये भी अपनी राय प्रकट कर दी कि रायसाहब के घर में डाका डाल कर जो कुछ माल असबाब है लूट लो और उनकी स्त्री और लड़की के साथ बलात्कार कर उन्हें मुसलमान बना लो।

मुहम्मद हुसेनखाँ की एक लड़की का नाम फातिमा था। उसकी अवस्था शीलावती की अवस्था के लगभग ही थी। लड़कपन में दोनों ने कितने ही बार साथ साथ खेला था। बड़ी होने पर भी दोनों उसी प्रकार प्रेम पूर्वक वार्तालाप करतीं थीं। शीलावती भी फातिमा को अपनी छोटी बहिन के समान प्यार करती थी। दोनों ही समान रूपवती थीं। लड़कपन से लेकर आज तक दोनों में से किसी के हृदय में यह भाव न उत्पन्न हुआ था कि एक दूसरे के धर्म में कितना बड़ा भारी भेद है। उन दोनों के सहज और स्वाभाविक प्रेमके आगे धर्म कोई वस्तु ही न थीं।

यदि नित्य नहीं तो सप्ताह में दो बार तो अवश्य फातिमा शीलावती के घर जाती और घंटो दोनो आपस मे बात करतीं। कितने ही बार दोनों में गो-हत्या के विषय मे भी बात चीत छिड़ चुकी थी। परन्तु फातिमा सदा अपनी राय शीलावती की राय के अनूकूल ही प्रकट करती। कभी कभी तो वह अपने धर्मवालों ही के प्रति घृणा और हिन्दुओं के प्रति सहानुभूति प्रकट करने लगती। एक बार शीलावती ने कहा—फातिमा! तुम अगर हिन्दू हो जाओ और मैं मुसलमान हो जाऊँ तो क्या कुछ बुराई है?

इस बात का उत्तर फातिमा ने यों दिया था कि हाँ बहुत जरूर बुराई है। मुसलमान होकर सिवा पाप करने के तुम और क्या करोगी? अच्छा तो यह हो कि तुम भी अपने साथ मुझे हिन्दू बनालो जिसमे हम और तुम एक ही घर में ब्याही जायँ और हमेशा एक ही साथ रहें।

फ़ातिमा की इस बात को सुनकर शीलावती ने उसे गले लगा कर एक बार प्रेम से उसका मुख चूम लिया। इस प्रकार दिन पर दिन दोनों का प्रेम बढ़ता ही गया।

बकराईद के झगड़े के कारण शीलावती और फातिमा के हृदय में बड़ी गहरी चोट लगी। झगड़े के पश्चात् पहले पहल जब दोनों एक दूसरे से मिलीं तो मिलते ही दोनों के नेत्रों से आसुओ की धारा बह चली। बड़ी देर तक रोने के बाद शीलावती ने फातिमा से कहा—फ़ातिमा! क्षमा करना तुम

लोगों को मेरे पिता के कारण बहुत बड़ी विपत्ति उठानी पड़ी। इसके लिये तुम मुझसे भूल कर भी घृणा न करना।

इस पर फ़ातिमा ने अपने अश्रुपूर्ण नेत्रों से शीलावती की ओर देखते हुऐ कहा था—बहन ! मुझे तो अपने ही पर लज्जा लगती है कि मैं ऐसे मज़हब के नीचे क्यों पैदा हुई कि जिसमें दया का नाम भी नहीं। जो मज़हब हमे बेकसूर का खून करना सिखलाता है उसे मैं क्यों कर और कैसे प्यार करूँ ?

फ़ातिमा की इन बातो को सुन कर शीलावती ने कहा फ़ातिमा तू मेरी छोटी बहिन है। यदि मेरी चलती तो मैं तुझे अपने ही घर रखती।

सारांश यह कि शीलावती और फातिमा में लड़कपन ही से प्रगाढ़ प्रेम था। झगड़े के पश्चात् भी फ़ातिमा अवसर पाकर शीलावती के घर जाती और घंटों उसके साथ बात चीत करती। दोनों धार्मिक बातो पर आलोचनायें और प्रत्यालोचनायें करते करते प्रेम मग्न हो जाती थीं। राय साहब के लापता होने पर शीलावती को दुखी देख फातिमा बेचारी भी शोक प्रकट करती थी। उसका अब्बा राय साहब को कैद कराने की फिक्र मे था इसे सोचकर वह बेचारी लज्जित होने लगती। शीलावती भी यह देख उसकी लज्जा निवारण करने का प्रयत्न करती।

यह हम ऊपर कह चुके हैं कि मुहम्मद हुसेन खाँ ने राय

थोड़ी दूर जाकर क्या देखती है कि एक वट-वृक्ष से जकड़ा हुआ एक मनुष्य बँधा खड़ा है।

साहब के घर को लूटने और उनकी स्त्री और लड़की के साथ बलात्कार करने की राय प्रकट की। उनकी राय पाते ही बहुत से ईद के अवसर पर जले भुने हुये मुसलमान बदला लेने की खुशी मे उछलने कूदने लगे। सब ने मिलकर गुप्त परामर्श किया और अपने इस कार्य के साधने का दिन भी निश्चित किया। सब यही सोचने लगे कि राय साहब के बदले राय साहब के घर वालो को ही मटियामेट कर दिया जाय। सब अपने इस अमानुषिक कार्य के लिये निश्चित तिथि की प्रतीक्षा करने लगे।

फ़ातिमा से उसके पिता का यह गुप्त षड्यंत्र छिपा न रहा। उसने छिप छिपकर अपने पिता की यह सारी कार्रवाई सुन ली थी। शीलावती पर आनेवाली भावी आशंका से वह बेचारी कांपने लगी। शीलावती के प्रति उसका प्रगाढ़ प्रेम उसके हृदय को आन्दोलित करने लगा। रह रह कर उसकी माता के पास यह अशुभ संदेश पहुँचाने के लिये वह अधीर हो रही थी। मन ही मन अब्बा के ऊपर घृणा और अपने मजहब के प्रति अश्रद्धा प्रकट करने लगी।

५

युवती का संकल्प

उन निर्दई मुसलमानो के हाथ पड़कर हमारी वह युवती जिसका वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं लाचार हो उनके साथ चलने लगी। अब अच्छी तरह सवेरा हो चुका था। पूर्व दिशा में सूर्यभगवान के स्वागत की सारी तैय्यारियां हो चुकी थी। युवती ने भी सतृष्ण नेत्रों से उस निकलते हुये लालमंडल का दर्शन किया। एक बार फिर उसने अपने हृदय मे कहा, "प्रभो"। तू मुझे कहाँ से कहाँ ले जाना चाहता है। मेरी माता

को मुझसे अलग करने में तुझे कौन सा सुख मिल रहा है। वह युवक जिसको मैं बंधन मुक्त कर आई हूँ मेरी प्रतीक्षा में मेरे विषय में क्या क्या सोचता होगा। अब इन आततायियों के हाथ से छूटने का कोई उपाय भी है या नहीं।" इसी प्रकार चिन्ता करती हुई बेचारी चुपचाप चलने लगी। सूर्य के निकलने पर जब उस दिशा का ज्ञान हुआ तो मालूम हुआ कि वह पच्छिम की ओर जा रही है।

चलते चलते उसने उन दोनो मुसलमानों मे से एक को संबोधित करके कहा—तुम लोग मुझे कहाँ ले चल रहे हो?

उस मुसलमान ने उत्तर दिया—अपने घर। फिर दोनों में इस प्रकार बातें होने लगीं।

युवती—तुम्हारा मुझ अबला को अपने साथ ज़बरदस्ती ले चलने का क्या प्रयोजन है?

मुसलमान—तुम्हारे चेहरे की इस खूबसूरती पर मैं दिलो जान से फ़िदा हूँ। मेरी औरत इन्तकाल कर गई है तुम्हारे साथ निकाह करके ऐश और आराम के दिन बिताऊँगा।

युवती—और अगर मैं तुम्हारे साथ निकाह करने के लिये राज़ी न होऊँ तो।

मुसलमान—तो मुझे तुम्हारे साथ जबदरस्ती करनी पड़ेगी।

युवती—क्या तुम्हारे मज़हब मे किसी औरत के साथ जबरदस्ती करना जायज़ है?

मुसलमान—हमारे मज़हब में ऐसा करना जायज़ ही नहीं बल्कि ऐसा करने वाले की तारीफ़ भी है। हिन्दुओं के घर की लड़कियाँ लेना और मुसलमानों की तादाद बढ़ाना हरएक मुसलमान का फ़र्ज़ है।

युवती—अगर मैं चोरी से तुम्हारे घर से भाग जाऊँ तो?

मुसलमान—एक दफ़ा मुसलमान होने के बाद तू मेरे घर से भाग नहीं सकती।

युवती—क्यों?

मुसलमान—इसकी वजह यह है कि फिर तू हिन्दू हो नहीं सकती। कोई हिन्दू तुम्हें फिर हिन्दू करने के लिये तैयार नहीं हो सकता।

युवती ने बात बदल कर कहा—अच्छा, अब तो मै तुम्हारे हाथ मे पड़ चुकी हूँ जैसा जी मे आवे वैसा करना परन्तु क्या मैं तुम्हारा परिचय सुन सकती हूँ?

मुसलमान—मेरा नाम आबिदखाँ है और मैं इसमाइलपुर का रहने वाला हूँ। वेष बदल कर गाय खरीदना और अपने हम—मज़हब वालों के हाथ बेचना ही मेरा काम है।

युवती—अधिक चलने के कारण मैं थक गई हूँ। बतलाओ अभी यहाँ से कितनी दूर चलना है?

मुसलमान—मेरा मकान अभी यहाँ से लगभग दो कोस की दूरी पर है। लेकिन अगर तुम आराम करना चाहो तो हमलोग तुम्हारे लिये किसी पेड़ के नीचे चलकर ठहर सकते है।

युवती ने मन ही मन सोचकर कि अब तो इन मुसलमानों के हाथ पड़ ही चुकी हूँ फिर शरीर को क्यों कष्ट दूँ ठहर थोड़ा आराम करने और अपनी प्यास बुझाने की इच्छा प्रकट की।

मुसलमान—अगर तू मेरे साथ राज़ी हो जा तो मैं तुझे अपनी जान से बढ़ कर प्यार कर सकता हूँ। बहुत जल्द तुम्हारे खाने पीने का भी इन्तज़ाम कर सकता हूँ।

युवती ने पहले तो अपने मन मे कहा—"नीच! कहीं तुझे इस प्यार के बदले अपनी जान से भी हाथ न धोना पड़े। क्या तू नहीं जानता कि किस हिन्दू लड़की से तेरा काम पड़ा है? कितनी ही भोली भाली हिन्दू लड़कियों को बहका कर तूने उन्हें नष्ट किया होगा। परमात्मा करे उन सबका बदला मेरे ही द्वारा चुक जाये।" फिर प्रकट रूप से कहा—अबतो मैं तुम्हारे हाथ पड़ ही चुकी हूँ। परन्तु राज़ी होने के पहले तुम्हें मेरी दो शर्तें स्वीकार करनी पड़ेंगी।

उस मुसलमान को स्वप्न मे भी यह आशा न थी कि वह युवती इतनी जल्दी उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर लेगी। युवती के मुख से शब्द सुनते ही वह मारे प्रसन्नता के फूल उठा। उसे यह स्वप्न मे भी विश्वास न था कि ऐसी लावण्य पूर्ण एक षोड़शवर्षीया हिन्दू बालिका उसकी स्त्री होने पर राज़ी होगी। चट बोल उठा—दो नहीं चार शर्तें मानने को

तैयार हूँ। तुम्हारे लिये आग मे भी कूद सकता हूँ। बोलो क्या करने के लिये कहती हो ?

युवती—शर्तें पीछे कहूँगी, चलो पहले थोड़ी देर तक आराम कर लें।

यह सुन कर उन दोनों मुसलमानों ने गायों को हाँककर एक आम के वृक्ष के नीचे किया और स्वयम्‌भी उसी वृक्ष के नीचे बैठ गये।

जिस लोटे मे जल भरकर वह युवती श्री महादेवजी की पूजा के लिये गई थी वह लोटा अभी भी उसके पास ही था। थोड़ी देर आराम करने के पश्चात् उन्हीं मुसलमानों से डोरी ले पास ही के एक कुएं पर जा उसने लोटे से जल खींच अपनी प्यास शान्त की और तब निश्चिन्त होकर मन ही मन परमात्मा से प्रार्थना करने लगी कि "हे प्रभो! इन निरपराध गायों की रक्षा करने में तू मेरी सहायता कर। इन राक्षसों से तू इनके प्राण बचा।"

अस्तु थोड़ी देर तक विश्राम करने के पश्चात् सब फिर उसी ओर चलने लगे जिधर जा रहे थे। दोपर होने के पहले ही वे एक बस्ती में पहुँचे जो देखने में मुसलमानों की ही जान पड़ती थी। जगह जगह पर बिना हाड़ मांस की गायें अन्तिम दिनों की प्रतिक्षा कर रही थीं। युवती ने समझ लिया कि आबिद खां और उसके साथी का घर भी इसी गांव मे है।

एक मकान के पास पहुँचकर आबिदखाँ ने उस युवती

की ओर देखकर कहा—यही मेरा मकान है। यहाँ तुम्हें किसी किस्म की तकलीफ़ न होगी। एक लड़की और एक लड़के को छोड़कर मेरे पास कोई नही है। घर मे चलो, आराम करो। मैं तुम्हारे खाने पीने का भी बहुत जल्द इन्तजाम कर देता हूँ। इतना कहकर आविद उस युवती को लेकर उसी घर में चला गया। उसका साथी गायो को हाँककर दूसरी और गायो के साथ एक बाड़े में बाँधने लगा।

६

विधवा का दुर्भाग्य

पाठक ! उस आहत युवक और उस दरिद्र युवती की भी अब हम को सुध लेनी चाहिये। दोनो ही विपत्ति के भागी हैं ऐसी अवस्था मे उन्हें एक दम छोड़ देना ठीक नहीं। जब वह स्त्री लकड़ी का बोझ लिये युवक को हाथ का सहारा देती हुई गाँव की ओर ले चली तो रास्ते में दोनों में इस प्रकार बातें होने लगी।

युवक—बहिन ! तुमने इस समय मेरी जो सहायता की है इसके लिये मैं जन्मजन्मान्तर तुम्हारा ऋणी होकर रहूँगा।

स्त्री—मैं एक अभागिनी विधवा हूँ भला मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकती हूँ। परन्तु इसपर भी जहांतक हो सकेगा तुम्हारी सेवा करूँगी।

युवक—इतनी ही अवस्था मे यह विपत्ति! क्या तुम्हारे घर मे और कोई है।

स्त्री—हाँ मेरे सास ससुर अभी जीवित हैं इनके अतिरिक्त घर मे दो एक लड़के और लड़कियाँ भी है।

युवक—तुम्हारे स्वामी को मरे कितने दिन हुये?

स्त्री—उन्हें मरे अभी छः सात महीने से अधिक नही हुये। लोग कहते हैं सरकार ने उन्हें फाँसी दे दी। हाँ, इतना तो मैं भी जानती हूँ कि मुसलमानो की हत्या के अभियोग मे सरकारने उन्हें भी गिरफ्तार करवाया था।

युवक—धर्म के मार्ग में यह विपत्ति! हाय परमात्मा क्या तू न्यायी नही है? चलो बहन! वही परमात्मा तुम्हें इसका बदला भी देगा।

इस प्रकार बातचीत करते-करते वह स्त्री पास वाले उस गाँव मे पहुँच गई। दो एक गली के बीच से घूमकर वह एक मकान के दरवाजे पर पहुँच खड़ी हो गई और युवक की ओर लक्ष्य करके बोली यही मेरा घर है। गाँव के बहुत लड़के उस स्त्री के साथ आये हुये उस आहत युवक को देखने के लिये इकट्ठा हो गये।

वह स्त्री उस युवक को वही छोड़ शीघ्रता के साथ घरके

भीतर गई और लकड़ियों का गट्ठर रख एक चारपाई और बिछोना अपने साथ ले बाहर आई। चारपाई को रख और उस पर बिछौना लगा उसने उस युवक को विश्राम करने का संकेत किया और यह कहकर कि मैं जल के लिये जाती हूँ घर के भीतर चली गई।

जिस समय वह घर के भीतर गई युवक के कानों मे गालियों की बौछार के साथ ये शब्द सुनाई पड़ने लगे। "निगोड़ी! एक कोढ़ी को कहाँ से अपने साथ ले आई है। क्या बेटे को खाकर अब इसी को अपना खसम बनाना चाहती है। हरामजादी! तुझे मैने लकड़ियाँ इकट्ठा करने के लिये भेजा था कि घर मे एक कोढ़ी लाकर बैठाने। भलमंसी चाहती है तो अभी उसके साथ तू मेरे घर से निकल।

फिर उसने उस विधवा युवती को ये शब्द कहते सुने, "माँ! कहीं तुम्हारी ये बातें उस अतिथि के कानो मे न पड़ने पावें नहीं तो भला वह अपने मन मे क्या कहेगा। अकेले मे तुम मुझे जो चाहे कह लेना"।

फिर सुनाई पड़ा,—"सुनकर वह निगोड़ा मेरा क्या कर लेगा? तेरा उसको अपने घर मे लाने का क्या मतलब है? बेटे को खाकर अब तू मुझे बदनाम भी करना चाहती है?

इस प्रकार और भी बातें हुईं जिनको वह युवक स्पष्ट न सुन सका। उसने मन ही मन कहा हाय! मेरे ही कारण उस बेचारी विधवा को इतना सुनना पड़ा है। भला मेरे बराबर

पापी कौन होगा कि जिसके लिये बिना अपराध ही एक विधवा बेचारी को इतना लांच्छन सहना पड़ रहा रहा है। यदि शरीर में शक्ति होती तो यहाँ से उठकर कही दूसरी जगह चला जाता। परन्तु क्या करूँ, कुछ बश नहीं।"

इस प्रकार वह सोच ही रहा था कि वह युवती लोटे में जल और एक थाल मे खाने की कुछ सामग्री ले उसके पास आई और सामने रखकर बोली इस समय जोकुछ है इसीसे अपनी क्षुधा शान्त करो तब तक मैं तुम्हारे लिये कोई न कोई उपाय अवश्य करूँगी।

युवकने कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से एकबार उस युवती की ओर देखा फिर जो कुछ सामने था उसी को खा और जल पी संतोष प्रगट किया।

तत्पश्चात् उस युवक को सोने को कह युवती विधवा वहाँ से चली गई।

एक तो लड़कों के कोलाहल से दूसरे विचारो की तरंग के झोकों से युवक को नींद न आ सकी। वह मन ही मन सोचने लगा—"क्या उसकी सहायता करने वाली यह स्त्री अत्यन्त दरिद्र है? नहीं, घर देखने से तो ऐसा नहीं जान पड़ता। तो क्या विधवा होने ही के कारण उस बेचारी की यह दशा है। हाँ, हिन्दू विधवाओं के भाग्य मे ब्रह्मा ने यही लिखा है। घरका कोई प्राणी भी उनपर दया की दृष्टि नहीं रखता। यही कारण है कि बेचारी को लकड़ियाँ इकट्ठी करनी

पड़ती है। दिनदिन भर भूखों रह जाना पड़ता है और फटे पुराने वस्त्रों से ही काम चलाना पड़ता है।

धीरे धीरे सन्ध्या हो चली। लड़के उस युवक को अकेला छोड़ अपने अपने घर चले गये। गृहस्थ भी अपने काम से खाली हो घर आये।

हमारी उस विधवा युवती के श्वसुर का नाम कमलापति है। कमलापति जितने ही स्वभाव के अच्छे हैं उनकी स्त्री सुलोचना उतनाही स्वभाव की दुष्टा और वाणी की कर्कशा है। गाँव की किसी स्त्री से उससे क्षण भर के लिये भी पटना एक अनहोनी बात है। सब उसकी निन्दा करते हैं परन्तु सुलोचना अपने बराबर किसी को भी नहीं समझती। दस दस के साथ अकेले गालीगलौज करने को तैयार रहती है। कमलापति भी उससे हार मान गये हैं। इसी कारण वे भी उसके कामों मे हस्ताक्षेप नही करते। दिन भर गृहस्थी का काम करने के बाद सन्ध्या समय घर आकर भोजन करते और फिर प्रातः काल ही काम पर चले जाते है। अपने बड़े लड़के उमानाथ के फांसी पाने का हाल सुनकर वे सदा शोकित रहते है। परन्तु दूसरे लोगों से सदा यही कहते है कि धर्म्म के कार्य्य मे प्राण देनेवालेका नाम सदा इस पृथ्वी पर अमर रहता है, बेटे ने जो यश कमाया है वह अक्षय है। अपनी पुत्रबधू सुभद्रा को वे बहुत प्यार करते है। परन्तु वह प्यार केवल हृदय का ही प्यार रह जाता है। सुलोचना के आगे उनकी एक भी नही चलती। जिस

दिन उसकी इच्छा के विरुद्ध घर में कोई कार्य हो उस दिन घर में हलचल उपस्थित कर देना उसके बाये हाथ का खेल है। अस्तु!

कमलापति भी सन्ध्या समय जब घर आये तो सुलोचना की कर्कशा वाणी सुनते ही सन्न हो गये और समझ लिया कि अवश्य आज इसने कोई विप्लवकांड उपस्थित किया है।

अभी बैठने भी न पाये थे कि सुलोचना ने आकर कहा— इस तरह काम न चलेगा। अपने मन का होकर रहना है तो अभी इस कुलटा को घर से निकालो। दिन भर घर में बैठी २ मक्खी मारती है और घर का सब काम काज मुझे करना पड़ता है। दो लड़के हैं उनकी सेवा करने का कौन कहे काल की तरह उन्हें खाने के लिये दौड़ती है।

कमलापति ने चुप रह जाना ही अच्छा समझा। वे यह जानते थे कि उनका बोलना जलती आगमे घी छोड़ना है। यह तो सुलो· चना का नित्य का अभिनय था और कमलापति उसकी प्रकृति से भलीभाँति परिचित थे। अतः उनके शान्त रह जाने पर सुलोचना थोड़ी देरतक बकझककर फिर घर मे चली गई।

इस दृश्य के समाप्त हो जाने पर सुभद्रा एक लोटे मे जल लाई और नीची दृष्टि किये हुये श्वसुर के सामने रख दिया। कमलापति न भी हाथ मुँह धोया और फिर संतुष्ट होकर बोले बेटी! आज तुम्हारे ऊपर इतना कुपित होने का क्या कारण है? सुभद्रा चुप रही और लोटा लेकर भीतर चली गई।

जब उन्होंने सुभद्रा के उस आहत युवक को अपने साथ

लाने का समाचार सुना तो वे मन ही मन सुभद्रा की इस सहृदयता पर बड़े प्रसन्न हुए परन्तु सुलोचना के भय से प्रकट कुछ न कह सके।

वह आहत युवक जो यह सब तमाशा देख रहा था मन ही मन अपनी दुर्दशा पर खीझने लगा। उसे उसके घावों के कारण इतनी पीड़ा नहीं थी जितनी कि सुभद्रा को उसके कारण अनेक बातें सुनने की। वह मन ही मन कहने लगा कि यदि मुझे यह सारा हाल पहले मालूम होता तो मैं जंगल मे ही मर जाता परन्तु इस निरपराधिनी को भूलकर भी यह कष्ट न देता।

अस्तु घर का काम काज कर चुकने और सबको खिला पिला लेने के पश्चात् सुभद्रा एक थाली में भोजन और लोटे का जल लेकर उस आहत युवक के पास आई और बड़े ही आग्रह के साथ दीनभाव से भोजन करने को कहा।

युवक ने बड़ी ही गम्भीरता से यह कह कर कि बहिन! मैं नहीं जानता था कि मेरे लिये तुम्हें इतनी बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ेगा भोजन करने के लिये बैठ गया परन्तु उसे यह नहीं मालूम हुआ कि वह विधवा अपने हिस्से का भोजन उसे खिला कर स्वयम् वैसे ही सो रही।

१

प्रेम-फाग

फागुन का महीना है। बसन्तऋतु का आगमन जान वृक्ष नये नये फूलो और पत्तों से उसके स्वागत की तैयारियाँ कर रहे हैं। आम्र-मंजरियाँ अपने सुगन्ध से प्रेमी भौंरों को उन्मत्त बना रही हैं। झुण्ड के झुण्ड मतवाले भ्रमर गुञ्जार करते और पुष्पो को चूमते तथा उड़ते फिरते हैं। कामदेव अपना फूल का धनुष बाण लिये मनस्वियों के गर्व को भी अपहरण करना चाहता है।

इधर तो यह साज, सामान और उधर स्त्री तथा पुरुष भी नये रंग मे रंगे दिखाई पड़ते हैं। फागुन का फाग गली गली में अपना विचित्र वेष दिखा रहा है। स्त्री तथा पुरुष सब फाग खेलते तथा प्रेम के गीत गा रहे हैं। जान पड़ता है बसन्त अपनी सारी सेना लेकर कामदेव की सहायता के लिये आ रहा है। वायु के झोकों से धूल उड़ उड़ कर मानो अपनी फाग लीला अलग ही दिखा रही है। जिधर देखो उधर ही अबीर और गुलाल उड़ रहे हैं।

जिन स्त्रियों के पति घर मे है उनकी प्रेमलीला का तो आज कहना ही क्या, परन्तु जिन युवतियो के पति परदेश हैं या जो युवतियाँ बिना पति की है वे हृदय को मसोस मसोस कर आह भर रही हैं और फागुन की उस आनन्दपूर्ण फागलीला को दुखपूर्ण नेत्रो से देख रही हैं।

अभी संध्या होने में कुछ विलम्ब है। इसी समय एक सर्वाङ्ग सुन्दरी बहुमूल्य वस्त्र तथा आभूषणों से सुसज्जित अपने काले केश से भौरों को भी लज्जित करती हुई एक पत्थर की शिला पर बैठी उद्यान में लगे हुए पुष्पवृक्षो के चारों ओर उड़ते हुए भौरों तथा रंग विरंगे फूलों को देख रही है। उसके गौरवर्ण पर हरे रंग की साड़ी जिसमें जगह जगह बेल बूटे भी कढ़े हैं विचित्र शोभा दे रही हैं।

उसके काले केश पृथ्वी पर्यन्त लटक रहे है। नेत्रों को इधर उधर दौड़ाती हुई वह सुन्दरी मछलियो की चंचलता को भी मात

कर रही है उसके यौवन के विकाश में मानों सुन्दरताके साम्राज्य की एक निराली ही झलक देख पड़ रही है। जिसको एकबार देख लेने पर देखनेवाला फिर वहां से दूसरी जगह जाने की इच्छा नहीं कर सकता। उसके सुन्दर गालोंको देख-कर गुलाबों को भी संकुचित हो जाना पड़ता है। कभी कभी तो भ्रमर इसी भ्रम में पड़ कर उसके मुख पर आ मड़राने लगते हैं। सारांश यह कि वह सुन्दरी बाला अपनी उपस्थिति से उस उद्यान की शोभा को और भी द्विगुणित कर रही है।

इस सुन्दरी बाला का नाम है पद्मावती। पद्मावती के पिताका नाम है जगदीशचंद्र। जगदीशचंद्र एक बहुत बड़े ज़मीदार हैं। कलक्टरसाहब के यहाँ भी उनका बहुत बड़ा मान है। उनके विषय में यहाँ अधिक न कहकर इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि वे सरकार के बहुत बड़े भक्त हैं। सरकारी कर्मचारियों को साल में दो बार दावत देना उनका सबसे बड़ा काम है।

पद्मावती जगदीशचन्द्र की अकेली पुत्री है। इस समय उसकी अवस्था पंद्रह वर्ष की है परंतु अभीतक उसका विवाह नहीं हुआ है जगदीशचन्द्र को यद्यपि उसके विवाह की चिन्ता है परन्तु अपनेसे बढ़कर कोई घटना उन्हें दिखाई नहीं पड़ती। माता लीलावती भी पद्मावती को प्राणसे भी अधिक प्यार करती है। हर प्रकार से सुखी पद्मावती जगदीशचन्द्र के घरको पूर्ण-मासी के चन्द्रमा के समान प्रकाशित कर रही है। अस्तु।

जगदीशचन्द्र और इनके परिवार के विषय में हम आगे चल कर फिर कहेंगे।

जिस समय पद्मावती अपने उद्यान मे बैठी उस उद्यान की शोभा का अवलोकन कर रही थी उसी समय किसीने पीछे से आकर उसके ऊपर लालरंग से भरी हुई पिचकारी छोड़ी। पिचकारी के लगतेही पद्मावती उठ खड़ी हुई। इसकी हरी रेशमी साड़ी लालरंग से सराबोर होगई। भींगकर बदन से सट जाने के कारण उसकी शोभा पहले की अपेक्षा और भी बढ़ गई, ऐसा जान पड़ने लगा मानो यौवन की सरिता करारो को काटती हुई बड़े वेग से बह चली हो। रंग के पड़ते ही उसके चेहरे का रंग बदल गया। उसने जो पीछे फिर कर देखा तो एक बीस वर्षका युवक हाथ मे पिचकारी लिये उसके पीछे चुपचाप खड़ा है। उसके सुन्दर अधरों पर मुसकान की एक रेखा खिंची हुई है।

पद्मावती ने उस युवक को देखते ही कहा—वीरसिंह यह तुमने क्या किया! मेरी रेशमी साड़ी को तो तुमने एक दम चौपट कर दिया। भला माता के पास चलकर मै क्या उत्तर दूँगी।

युवक वीरसिंह ने हँसते हुये कहा—फागुन का महीना और होली का तो दिन ही है। यदि साड़ी के ख़राब होने का डर था तो आज तुमने इसे पहना क्यों? तुम्हारी इस साड़ी को देखकर ही मेरे मनमे तुम्हारे साथ फाग खेलने की इच्छा हुई।

पद्मावती—वीरसिंह ! तुम्हें ऐसा साहस क्यों हुआ ? क्या तुम नहीं जानते कि यदि पिताजी तुम्हारी यह करतूत सुनेंगे तो हमारी और तुम्हारी दोनो की क्या दशा होगी ?

वीरसिंह—पद्मावती ! क्या तुम्हें फाग खेलना अच्छा नहीं लगता ? देखो चारो ओर अबीर और गुलाल उड़ रहे हैं। देखो, देखकर हृदय उल्लास से पूर्ण हो जाता है। यदि तुम्हें इसका दुख है तो तुम मुझे क्षमा करो, फिर ऐसा करने का साहस न करूँगा।

पद्मावती—नहीं वीरसिंह ! सो बात नहीं। तुम स्वप्न मे भी मेरी आँखों में अपराधी नहीं हो सकते। परन्तु इस साड़ी के लिये मैं क्या उत्तर दूँगी यह मेरी समझ मे नही आता।

वीरसिंह—इसके बदले मैं तुम्हें एक नहीं ऐसी कितनी ही साड़ियाँ ला दूँगा। इस समय इसकी चिन्ता छोड़कर आओ मेरे साथ बसन्त का उत्सव मनाओ। ऐसा समय फिर न मिलेगा।

इतना कहते हुये वीरसिंह ने पद्मावती को अपने हृदय से लगाकर उसका मुख चूम लिया।

यह पहला ही अवसर था जब वीरसिंह ने पद्मावती को चूमने का साहस किया था। इसके पहले दोनों मे भाई और बहन का विशुद्ध प्रेम था। यौवन के प्रभाव से वही प्रेम अपना नया रंग पकड़ता जा रहा था परन्तु फागुन की मस्ती ने आज वीरसिंह की लज्जा का आवरण खींच लिया और वह स्पष्ट रूप मे प्रकट हो गया।

वीरसिंह के हृदय से लगते ही पद्मावती चौंक कर पीछे हट गई। लज्जा और क्रोध से उसके चेहरे का रंग फीका पड़ गया। उसकी यह दशा देख वीरसिंह का हृदय भी दहल उठा। कुछ क्षण तक दोनों चुप रहे। तदनन्तर पद्मावती ने सरोष नेत्रों से वीरसिंह की ओर देखकर कहा—वीरसिंह ! तुम्हारा यह अनुचित व्यवहार देखकर मेरा हृदय काँप रहा है। मेरे पिताने तुम्हें हवशियों के हाथ से इसलिये नहीं मोल लिया है कि तुम उन्हीं की लड़की के साथ इस प्रकार का बर्ताव करो।

वीरसिंह पद्मावती की इन बातों को सुनकर पहले तो काँप उठे परन्तु फिर सँभल कर बोले—प्यारी पद्मावती ! मुझे क्षमा करो। यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो मैं यहाँ से चला जाऊँ और कहीं दूसरी जगह जाकर अपनी जीविका का उपाय करूँ।

वीरसिंह को दुखी देखकर पद्मावती का हृदय पसीज उठा। ऐसा तो वह स्वप्न में भी नहीं चाहती थी कि वीरसिंह वहाँ से चला जाय। अपने कहे हुये कटु वाक्यों पर उसे स्वयम् पछतावा होने लगा। कातर शब्दों से उसने कहा—क्या तुम्हें यह सुनकर दुख हुआ ? वीरसिंह ! मैं तुम्हें प्यार करती हूँ और हृदय से प्यार करती हूँ परन्तु क्या तुम सोच सकते हो कि माता पिता को यदि इस बात का पता चल जाय तो हमारी और तुम्हारी दोनो की क्या दशा होगी ?

वीरसिंह पद्मावती के मुँह से ये वाक्य सुनते ही गद्गद् हो उठे। प्रसन्नता के मारे हृदय फूल उठा, बोले—पद्मावती !

आज तुमने मेरे हृदय की अभिलाषा को पूरी कर दिया। अब मुझे और कुछ न चाहिये। तुम्हारे इस सुन्दर मुखमंडल को देखने के लिये मैं स्वर्ग के वैभव को भी पैरों से ठुकरा सकता हूँ।

पद्मावती ने हँस कर कहा—ये उन्मत्त भौंरे इन फूलों के साथ इठला इठला कर फाग मना रहे थे। इसी बीच में तुमने भी आ कर मेरे साथ फाग मनाई। मेरी यह साड़ी जन्म पर्य्यन्त तुम्हारे साथ आज के इस प्रेम सम्मिलन का स्मारक रहेगी।

जो वीरसिंह पद्मावती के साथ निर्भय होकर एकान्त मे भी बैठे घंटों बात किया करते थे वही वीरसिंह आज उस उद्यान में उसी पद्मावती के साथ अकेले बात चीत करने मे सशंकित होने लगे। हृदय मे इस बात का भय उठने लगा कि कहीं कोई उन्हें इस प्रकार बातचीत करते देख न ले। कारण यह था कि उनके प्रेम ने आज नवीन रूप धारण कर लिया था। इसी भय के कारण वे अधिक देर तक वहाँ ठहर न सके और पद्मावती से विदा होकर बैठकखाने की ओर चले गए।

वीरसिंह के चले जाने पर पद्मावती लगी मन ही मन विचार करने और अपनी दशा को सोचने "तो क्या वीरसिंह मुझ से प्रेम करते हैं? मेरे पिता तो उन्हें पुत्र की भांति प्यार करते है। सुनती हूँ उन्होंने वीरसिंह को हबशियो से खरीदा है फिर यह कैसे संभव हो सकता है कि मेरा ब्याह वीरसिंह के साथ हो। यदि ऐसा होना असम्भव है तो फिर वीरसिंह के

प्रति मेरे हृदय में भी क्यों प्रेम पैदा हुआ ? अब तो मैं भी अपना हृदय वीरसिंह को अर्पण कर चुकी। जो होना था हो चुका। परमात्मा ! अब मेरी लज्जा तुम्हारे हाथ है। तू ही सबके हृदय को देखने वाला है, जैसी तेरी इच्छा हो वैसा कर।"

८

मुसलमानों का अत्याचार।

हम यह ऊपर लिख चुके हैं कि मुसलमानों ने मुहम्मद हुसेन खाँ की आज्ञानुसार राय गंगासिंह के घर पर डाका डालने का निश्चय किया और उनका यह निश्चय फ़ातिमा को भी मालूम हो गया। फ़ातिमा अब शीलावती से यह सारा भेद कहने के लिये अधीर होने लगी।

आज फागुन की पूर्णमासी है। जगह जगह हिन्दू अपना उत्सव मना रहे हैं परन्तु हमारे राय साहब का घर उदास और

चिन्तित दिखाई पड़ता है। सच है बिना राजा के प्रजा की शोभा नहीं हो सकती।

दिन ढल चुका है इसी समय राय साहब के मकान की एक बुर्जी पर दो स्त्रियां बैठी आपस मे बातें कर रही हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इनमें से एक हमारी राय साहब की पुत्री शीलावती और दूसरी फातिमा है। दोनों मे इस प्रकार बातें हो रही है—

फातिमा—बहिन ! तुम्हारे ऊपर आज ही रात को एक बहुत बड़ी विपत्ति आने वाली है उसी की सूचना देने के लिये मैने छिपकर तुम्हारे घर आने का साहस किया है। यदि मेरे अब्बा को यह हाल मालूम हो जायगा तो वे मुझे जीती न छोड़ेंगे।

शीलावती—फातिमा ! विपत्तियाँ तो झेल ही रही हूँ। कष्ट सहते सहते मुझे विपत्तियों के नाम से भय नहीं लगता। बोलो, अब दूसरी कौन सी विपत्ति आने वाली है।

फातिमा—कहते हुये कलेजा काँपता है। यदि शीघ्र ही कोई उपाय न किया जायगा तो तुम्हारी और तुम्हारी माता दोनो का सर्वनाश है। आज ही रात को मेरे अब्बा बहुत से मुसलमानों को लेकर तुम्हारे घर पर डाका डालेगे और तुम दोनों को पकड़ कर जबरदस्ती मुसलमान बना बकराईद के त्योहार का तुम्हारे पिता के साथ बदला चुकायंगे।

शीलावती—क्या तू यह सच कहती है ? क्या तेरे अब्बा

ऐसा नीच कार्य्य करेंगे ? फ़ातिमा ! मुझे तेरी बातों पर विश्वास नहीं होता ।

फ़ातिमा—हाँ बहन, सच कहती हूँ । ज्यादा देर तक मैं यहाँ ठहर नहीं सकती । अब तुम अपने बचने की फिक्र करो ।

इतना कहकर फातिमा ने वहां से जाने का आग्रह किया । शीलावती ने यह कहकर कि फ़तिमा ! मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकती । आज तू ने यह सदेश देकर मेरे साथ जो उपकार किया है इस का बदला मैं जन्म भर भी नहीं चुका सकती । इतना कहकर फातिमा को गले से लगा लिया । उसकी आँखों से आंसुओं की धारा बहने लगी । बड़े ही प्रेम से उसने फातिमा को बिदा किया और स्वयम् सीढ़ी से उतर माता के पास जाकर फातिमा द्वारा सुने हुये संदेश को ।

सुरुचि ने जब यह हाल सुना तो उसके तो होश उड़ गये । जो विपत्ति आज उसके और उसकी पुत्री के ऊपर आने वाली थी वह पहले की सारी विपत्तियो से कहीं बढ़कर थी । भय के कारण उसके मुख से एक शब्द भी न निकला । फातिमा को वह लड़कपन से जानती थी इसलिये उसे उसकी बातो पर अविश्वास भी न हो सका । धर्म पर आने वाले संकट की भावी आशंका से वह एकदम घबड़ा उठी । कुछ देर के बाद बोली—बेटी ! ऐसे कुसमय मे क्या उपाय किया जाय ? बोली यहाँ से भाग कर कहाँ चलें । और फिर भागना भी तो कठिन है । भला,

हम स्त्रियाँ अकेले कहाँ चल सकती हैं ! जान पड़ता है विधाता एकदम बाम हैं ।

शीलावती ने धीरज देते हुए कहा माता ! इस तरह तो काम न चलेगा आज ही रात को मुसलमान हमारे घर को चारो ओर से घेर लेंगे । जल्द कोई उपाय सोचना चाहिये । चलो, कीमती गहनों और जवाहिरातोंको एक गठरीमे बांध यहां से भाग चलें ।

सुरुचि ने कहा— भागने में भी तो भय है, ऐसा न हो हम लोग चोर और डाकुओं के हाथ में पड़ जायँ और फिर उनसे छूटना कठिन हो जाय ।

शीलावती—पहले इस विपत्ति से बचना चाहिये, फिर देखा जायगा । हम लोगों का इस समय एक एक क्षण अमूल्य हो रहा है ।

शीलावती की बातों को मानकर सुरुचि वहाँ से उठी और दोनों माता और पुत्री संभाल संभाल कर गहनों और जवाहिरातों को इकट्ठा करने लगी । थोड़े बहुत कपड़ों और जरूरी चीजों की भी उन्होंने एक गठरी बनाई और उसे भी भागते समय अपने साथ ले जाने का निश्चय किया ।

इतने मे सध्या हो गई अब । उनकी व्याकुलता क्षण पर क्षण बढ़ने लगी । माता और पुत्री यही सोचने लगीं कि कब और किस ओर को भागें ।

परमात्मा की लीला कि इतने मे एक सन्यासी ने द्वार पर आकर भिक्षा की पुकार की । सुरुचि अतिथि और सन्यासियों को

कभी खाली हाथ अपने द्वार से न जाने देती थी। इस विपत्ति के समय भी उसने सन्यासी को भिक्षा देना उचित समझ पुत्री शीलावती को अन्न देकर सन्यासी के पास भेजा।

शीलावती जब अन्न लेकर सन्यासी के पास गई तो उसने क्या देखा कि उसकी अवस्था लगभग पचीस वर्ष थी। उसके सुन्दर शरीर पर गेरुआ वस्त्र बहुत ही भला मालूम पड़ता था। चेहरे के देखने से वह कोई वीर राजपूत जान पड़ता था। हाथों में एक कमंडल और सँड़से के अतिरिक्त और कुछ न था। कंधे से एक झोला लटक रहा था।

शीलावती ने भिक्षा का अन्न सन्यासी के कमंडल मे डाल दिया जिसे उसने अपनी झोली मे रख लिया। भिक्षा देकर शीलावती जब घर मे जाने लगी तो सन्यासी ने रोक कर कहा—बहिन! मैं तुम्हारे पास केवल भिक्षा ही के लिये नहीं आया हूँ बल्कि एक संदेश भी लाया हूँ। तुम्हारे ऊपर जो विपत्ति आने वाली है उससे तुम्हारी रक्षा करने आया हूँ। लो यह पत्र ले जाकर अपनी माता को दे दो। मैं यहाँ अधिक नहीं ठहर सकता।

शीलावती को पत्र देकर वह सन्यासी जल्दी जल्दी एक ओर को चला गया और बात की बात में लापता हो गया।

शीलावती भी पत्र लेकर शीघ्रता से माता के पास आई और सारा हाल कह सुनाया।

सुरुचि ने जब पत्र खोल कर पढ़ा तो उसके मुख पर प्रसन्नता की झलक देख पड़ी। तत्पश्चात् जल्द वहाँ से उठी और एक अन्धकार पूर्ण कमरे में जाकर कुछ देर के बाद वहाँ से लौट आई। अब उसके मुख पर विषाद की छाया भी न थी। मारे प्रसन्नता के उसके पैर पृथ्वी पर न पड़ते थे। ऐसा जान पड़ने लगा मानो उसे उसके पति का दर्शन हुआ हो। उसकी सारी चिन्ता चण भर में इस प्रकार दूर हो गई जैसे सूर्य के आगे अन्धकार। शीलावती भी यह देख कर एक टक माता का मुंह ताकने लगी। सुरुचि ने अब बड़ी ही शान्ति से कहा—बेटी! अब कोई भय नहीं। परमात्मा ने हमारी पुकार सुन ली। हम लोगों को इस विपत्ति से बचने का उपाय मिल गया। ऐसा कह कर वह शीलावती को ले उसी अन्धकारपूर्ण कोठरी की ओर चली जिसमें वह स्वयम् जा चुकी थी।

इधर तो राय गंगासिह के घर मे सुरुचि और शीलावती का यह हाल था और उधर मुसलमान उनके घर पर डाका डालने की तैय्यारियाँ कर रहे थे। दो घड़ी रात बीतते वे अपना कार्य करने वाले थे।

धीरे २ वह समय आ पहुँचा। बहुत से मुसलमानों ने एक साथ ही राय गंगासिह के मकान को घेर लिया। उन्होंने देखा कि मकान के जितने बाहरी दरवाजे थे सब भीतर से बन्द थे। यह देख उन्होंने समझ लिया कि राय साहब की स्त्री और लड़की अभी घर के भीतर हैं। बहुत से मुसलमानों ने मिलकर सदर

दरवाजा तोड़ दिया और एक साथ ही घर के भीतर घुस गये। सबके आगे हमारी फ़ातिमा के अब्बा हुसेन खां थे।

घर के भीतर पहुँच कर उन्होंने माता और पुत्री को ढ़ूंढ़ना आरंभ किया। कोने कोने ढूढ़ डाला परन्तु उनका पता न चला। यह देख मुहम्मद हुसेन खॉ बड़े हैरान हुये। एक बार नहीं कई बार उन्होंने बड़े ही ध्यान से घर को ढूंढ़ा परन्तु फल ज्यों का त्यो रहा। मुसलमानों को यह आशा थी कि लूट में बहुत सा माल भी मिलेगा, परन्तु मामूली वर्तन और कपड़ों को छोड़ कर उनके हाथ कुछ न लगा। सुरुचि और शीलावती के न मिलने पर तो वे और भी आश्चर्यान्वित हुये।

लाचार जो कुछ लूटते बना लूट कर मुसलमान अपने २ घर गये। उनके जाते ही वह स्थान भांय भांय करने लगा। सब से बड़ा आश्चर्य उन्हें माता और पुत्री के ग़ायब होने का था। वे अपने किये हुये पर स्वयम् पछताने लगे।

फ़ातिमा ने जब यह हाल सुना कि शीलावती और उसकी माँ बचकर वहां से भाग गईं तो उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा।

चारपाई पर फटी पुरानी गुदड़ियों की दुर्गन्ध से वह घबड़ा उठी और पृथ्वी पर बैठ जाना ही उचित समझा। वह घर उसे नरक से भी भयंकर प्रतीत होने लगा।

आबिद ने अपनी लड़की करीमा से जो बगल ही मे खड़ी थी और जिसकी उमर लगभग १२ वर्ष थी पानी लाने को कहा। करीमा दौड़ कर एक गंदे मिट्टी के बँधने मे जल लाई। आबिद ने उस युवती को हाथ मुँह धोनें का आग्रह किया। भला वह युवती कब आबिद के इस आग्रह को स्वीकार करती। उसने कहा—जब तक तुम्हारे साथ हमारा निकाह न हो लेगा तब तक मै तुम्हारा छुआ अन्न जल नहीं ग्रहण कर सकती।

आबिद ने उत्तर दिया—तब तक क्या तुम भूखी रहोगी? जब मैं तुम्हें अपने साथ लाया हूँ, तो निकाह तो होवे ही गा मगर खाने पीने मे क्यों एतराज़ कर रही हो? निकाह पढ़वाने में भी खर्चा लगेगा।

युवती ने मनही मन सोचते हुये कि किस तरह अपना कार्य सिद्ध हो कहा—परन्तु क्या तुम्हें मेरी शर्तें स्वीकार हैं?

आबिद—शर्तें तो मैं भूल ही गया जी। अच्छा बोलो, तुम मुझसे क्या चाहती हो? अगर मेरी ताकत की बात होगी तो तुम्हारे लिये उठा न रक्खूंगा।

युवती—हां, हां, दोनो तुम्हारे ताकत की बात है। पहली शर्त यह है कि तुम इन गायो को जिन्हें तुमने कैद कर रक्खा है छोड़ दो या किसी हिन्दू को दे डालो और दूसरी बात यह कि

तुम भी मेरे साथ हिन्दू मजहब को कबूल करो। अगर ऐसा करना तुम्हें मंजूर नहीं है तो मैं तुम्हारी औरत नहीं बन सकती।

युवती की यह बात सुनते ही आबिद बड़े चक्कर मे पड़ गया। उसने कहा—दो मे से एक भी नहीं हो सकता। पहला हाथ तो तू मेरी रोजी पर साफ़ करना चाहती है और दूसरा मेरे मज़हब पर, भला यह भी कभी हो सकता है ?

युवती ने गभीरता से उत्तर दिया—तो यह भी नही हो सकता कि तुम्हारे जैसे पापी के साथ मैं अपना धर्म भ्रष्ट करूँ। यदि तुम्हें मेरी शर्तें नही स्वीकार हैं तो मैं स्वप्न मे भी तुम्हारे हाथ का छुआ अन्न और जल नहीं ग्रहण कर सकती।

आबिद ने अपने कर्कश स्वर मे कहा—अब तू मेरे हाथों से छूट कर कहां जा सकती है। मै चाहूँ तेरी शर्तों को मानूं चाहे न मानूं मगर तुम्हें तो मेरी बात माननी ही पड़ेगी। आज नहीं तो दो चार दिन मे सही—तुम्हारी ही की तरह सब हिन्दुओं की लड़कियां पहले नाज और नखरा करती हैं मगर आखिर में इसी मजहब को कबूल करके हम मुसलमानों के साथ ऐश करती हैं।

युवती ने मन ही मन कहा—"पापी ! क्या तूने मुझे और लड़कियो की तरह जाना है। मैं भी तेरी मृत्यु का उपाय ढूढ़ रही हूँ।" फिर उसने प्रकट रूप मे कहा—अफ़सोस कि तू एक कमजोर के साथ अपनी ताकत दिखाना चाहता है, बात कह कर भी बात छोड़ता है।

आबिद ने कहा—मैं नहीं जानता था कि तुम्हारी शर्तें इतनी कड़ी होंगी। मैं इन शर्तों को भूल कर भी मंजूर नहीं कर सकता। खैर तुम एक दफा फिर सोच लो कि तुम्हारा यहाँ से छूटना मुश्किल है। आखिर बिना खाये पिये कै दिन तक रह सकती हो?

इतना कह कर आबिद करीमा को उस युवती के पास रहने को कह वहाँ से चला गया। बाजार जाकर उसने आटा वगैरह खरीद किया। जरूरी चीजें खरीद चुकने के बाद वह आया और करीमा से उसने खाना पकाने को कहा। करीमा खाना पकाने चली गई। तत्पश्चात् आबिद ने सन्दूक से एक तेज छुरा निकाला। वही चमकता छुरा लेकर उसने एक मुर्गी के बच्चे को जिसे उसने पहले ही से पाल रक्खा था जवह करना चाहा। बेचारा मुर्गी का बच्चा छुरा के देखते ही लगा फड़फड़ाने। आखिर उस नर-पिशाच ने उस बच्चे के गले पर छुरा रेत कर उसका प्राण ले ही लिया। वह युवती इस दृश्य को न देख सकी और उसने अपने दोनो हाथों से नेत्र बन्द कर लिये। आबिद ने फिर छुरा जहां का तहां रख दिया। युवती ने यह देख मनही मन कहा—खैर, काम पूरा करने का साधन तो मिल गया। आबिद को इस बात का जरा भी ख्याल न हुआ कि वही छुरा उसका भी प्राण उसी प्रकार लेगा जिस प्रकार उसने एक क्षण पहले उस मुर्गी के बच्चे की जान ली थी।

युवती मनही मन अपने कार्य के पूरा करने की युक्ति ढूंढ़ने

लगी। उसने अपने हृदय को थाम कर कहा—हृदय! धीरज धर। यही तेरी परीक्षा का समय है। यदि अबकी बार तू ने साहस छोड़ा तो निश्चय जान कि तुझे जन्म भर पछताना पड़ेगा।

अपना कार्य समाप्त कर चुकने के पश्चात् आबिद फिर उसी युवती के पास आया और बड़ी ही नम्रता से बोला—इस तरह हठ करने से काम न चलेगा। उठो हाथ मुंह धोकर कुछ खाओ। अब तुम यहां से कहीं दूसरी जगह नही जा सकती। कलही मैंने तुम्हारे साथ निकाह की भी तैय्यारी कर ली है। कल तुम जरूर मुसलमान हो जाओगी। फिर भूखे और प्यासे कै दिन रहोगी!

युवती ने आबिद की बातों का कुछ भी उत्तर न दिया वह मनही मन सोचने लगी—"हाय! मैं इन गायों को न बचा सकी। यदि मैं आज यहां से न भाग सकी तो कल अवश्य मुझे मुसलमान हो जाना पड़ेगा। चारो ओर मुसलमानों की बस्ती है अतः यहां से बचकर भागना भी कठिन है। क्या उपाय करूं कुछ समझमें नहीं आता। पास में वेष बदलने का भी कोई सामान नहीं। यदि भागते हुए पकड़ ली गई तो और भी बुरी हालत होगी। इन्हीं बातों की विवेचना करते करते वह बेचारी व्याकुल हो उठी।

धीरे धीरे रात हो गई। आबिद ने स्वयम् खा चुकने के पश्चात् हमारी उस युवती को भी खाने का बहुत आग्रह किया। परन्तु भूख से व्याकुल होने पर भी क्या वह हिन्दू बालिका

एक टुकड़े रोटी के लिये अपना धर्म छोड़ती ! ऐसा सबक तो उसने भूल कर भी न सीखा था। जब आबिद के लाख कहने पर भी वह युवती टस से मस न हुई तो आबिद भी उसे सोने का स्थान बता स्वयम् थका होने के कारण जमीनही पर लेट रहा। उसे इस बातकी आशंका भी न थी कि वही उसकी अंतिम रात थी।

इधर तो आबिद थके होने के कारण निद्रा में अचेत हो गया परन्तु उधर उस युवती की आंखों मे नींद कहां ! उसने भी आँख मूंद कर सो जाने का स्वांग किया परन्तु उसके हृदय में जो उथल पुथल मच रहा था उसे या तो परमात्मा जानता था या वह। जब उसे यह निश्चय हो गया कि करीमा और उसका एक छोटा भाई जिसका नाम रहमतुल्ला था वे दोनो भी निद्रा में अचेत हो गये तो उसने अपने हृदय को थाम कर कहा—"अब इस अवसर पर चूकना सदा के लिये अपने को इसी मुसलमान के हाथ में सौंपना होगा। ऐ हृदय! धीरज धर, कार्य करने का समय बार बार नही मिलता। एक बार का खोया हुआ अवसर फिर हाथ नहीं आता।

रात प्रायः आधी बीत चुकी थी। इसी समय उस युवती ने वहाँ से भागने का निश्चय किया। परन्तु आबिद ठीक दर-वाजे के पासही सोया पड़ा था। यह निश्चय था कि यदि भागते समय वह जग जाता तो फिर उसके भागने का मार्ग सदा के लिये बन्द हो जाता। इसके अतिरिक्त गायों को बंधन-

मुक्त करने का भार भी वह अपने ही ऊपर समझती थी। अतः वह इसी सोच विचार में कुछ देर तक बैठी रही। फिर धीरज धर कर उठी परन्तु एक दीर्घ निःश्वास के साथ फिर बैठ गई।

थोड़ी देरके बाद वह अपने अन्तिम निश्चय के साथ अपने धड़कते हुये हृदय को संभाल कर उठी। वह जो कार्य करने जा रही थी वह एक स्त्री के हाथ से होना कठिन था। परन्तु विपत्ति में हिम्मत भी बढ़ जाती है। अस्तु, उसने चोर की भाँति सन्दूक के पास दबे पाँव जा, सन्दूक को खोल वही छुरा जिससे आबिद ने मुर्ग़ी का बच्चा जबह किया था निकाला। छुरा हाथ में ले उसने एक बार उसकी धार देखी फिर ऊपर की ओर देख मनही मन परमात्मा से प्रार्थना करने लगी—"हे परमात्मा! तू मेरी सहायता कर। आज मैं धर्म की रक्षा के लिये इसी छुरे से आबिद की हत्या करना चाहती हूँ। मेरा हृदय इस बात की गवाही नहीं देता है कि मैं कोई पाप करने जा रही हूँ।"

तत्पश्चात् वह युवती अपने धड़कते हुये हृदय को थाम कर हाथ में वही छुरा लिये धीरे धीरे आबिद की चारपाई की ओर चली।

पास जाकर देखा तो आबिद निद्रा में अचेत था। ज़रा से खटके के साथ उसका जाग जाना संभव था, यह सोच कर हृदय दहल उठा। विलंब करने में वह और भी भयभीत होती

जा रही थी, मन और भी आगा पीछा कर रहा था अत. उसने शीघ्रता करना ही उचित समझा । छुरे को ले एक बार गौर से उसकी धार को देखा और फिर अपने अन्तिम निश्चय पर दृढ़ हो गई।

छुरे को मजबूती से हाथ मे पकड़ उसने बड़ी ही साव-धानी से आबिद के गले पर वार किया। देखते ही देखते वह तेज छुरा उसके गले से पार हो गया। छुरे के लगते ही एक बार चीखने का शब्द हुआ परन्तु फिर ज्यो की त्यों शान्ति छा गई। आबिद ने तड़प तड़प कर प्राण छोड़ दिया।

इस काम को पूरा कर युवती ने धीरे २ किवाड़ खोला। यदि यह चाहती तो आबिद के लड़के रहमतुल्ला का भी काम तमाम करती जाती परन्तु ऐसा करना उसने उचित न समझा।

किवाड़ खोलने के बाद वह हाथ मे छुरा लिये दबे पाँव आबिद की लाश को वहीं छोड़ उस गन्दे मकान से बाहर हुई। बाहर होते ही वह सीधे उस बाड़े के पास गई जिसमें दुख की मारी बेचारी गायें भूख और प्यास से व्याकुल तड़प रही थीं। युवती ने पहुँचते ही बाड़े के भीतर प्रवेश कर निःशंक गायों का बंधन खोलना प्रारम्भ किया।

अभी आधी गायों को भी वह बंधनमुक्त न कर सकी थी कि एका एक उसके कानो में "पकड़ो, पकड़ो" की आवाज आई। आवाज के सुनते ही वह छिपना चाहती थी कि तीन चार मुसलमानो ने आकर उसे घेर लिया। बचने का कोई

दूसरा उपाय न देख उस युवती ने उसी छुरे द्वारा अपनी रक्षा करने का निश्चय किया। जिस समय वह छुरा हाथ में ले भगवती दुर्गा की भांति उन मुसलमानों के समक्ष खड़ी हो गई उस समय उनके छक्के छूट गये। परन्तु एक तो वह स्त्री और दूसरे वे तीन २ चार २ भला वह बेचारी उसके सामने कब तक अड़ सकती थी। तिस पर भी उसने उनमें से एक को घायल कर ही दिया। परन्तु अन्त में लाचार वह उनके हाथ पकड़ी गई। छुरा भी हाथ से छूट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा जिसको एक दूसरे मुसलमान ने उठा लिया। युवती का कैद होना था कि बाहर से यह आवाज आई मारो, मारो, जाने न पावे।"

१०

भाई और बहिन

उस आहत युवक को खिला पिला चुकने के बाद सुभद्रा बिना खाये ही घर में जाकर सो रही। इधर वह युवक भी भोजन से निवृत्त हो अपनी शैय्या पर सो रहा। जब सवेरा हुआ तो युवक की नींद खुली। गृहस्थ अपने अपने काम पर जाने लगे। पक्षी अपना चारा ढूंढ़ने की चिन्ता मे घोसलों से निकल इधर उधर उड़ने लगे। सभी लोग अपने अपने काम में लग गये।

हमारी वह विधवा युवती भी सूरज निकलने के पहले ही घर का सारा काम काज समाप्त कर चुकी। जब उसे और कुछ करना बाकी न रहा तो लोटे का जल और दतुअन ले अपने उस अतिथि के पास आई। अभी तक उसे उस आहत युवक के बारे मे यह भी न मालूम था कि वह कौन है। रात भर इसी चिन्ता में रही कि कब सवेरा हो और कब उस युवक की कहानी सुनूँ। युवक के सुन्दर और तेजपूर्ण मुख मंडल को देख उसकी उत्सुकता और भी बढ़ती जाती थी। अभी तक उस युवक के आहत होने का कारण उस विधवा को न मालूम था, जिसे वह उस युवक के मुँह से जल्द सुनना चाहती थी।

जब वह विधवा जल लेकर आई तो युवक ने पहले उसी शीतल जल से घावों को धोया। धो चुकने के बाद उन पर कपड़ा बाँधा। तत्पश्चात् बचे हुए जल से मुँह हाथ धोने लगा। सुभद्रा ने इसी समय अपना प्रश्न उपस्थित किया—अब तो मैं तुम्हें अपना अतिथि बना चुकी! सासु त्रिरेचना के गालियो की बौछार का ध्यान न कर तुम्हें मैं अपने साथ ले आई। मैं स्वयम् अभागिनी हूँ। यद्यपि घर में किसी बात की कमी नहीं है तो भी अनेक कष्टो को झेलती हुई मैं अपना दुःखमय जीवन बिता रही हूँ। तुम्हारे जैसे एक आहत वीर की सेवा करने मे भी मेरे लिये अनेक विघ्न है परन्तु इसके बदले क्या मै तुमसे पूँछ सकती हूँ कि तुम कौन हो? और तुम्हारे आहत होनेका कारण क्या है? सुभद्रा इतना कहकर चुप हो गई।

वह युवक सुभद्रा के इस प्रश्न को सुनकर पहले तो चुप रहा कुछ देर के बाद साँस खींच कर बोला—"बहन! मैं अपनी कहानी क्या कहूँ। मैं भी तुम्हारी ही तरह अभागा हूँ। परन्तु जब तुमने पूछा तो कहना ही उचित है, अच्छा सुनो।" इतना कह कर उसने फिर एक साँस ली और कहना प्रारम्भ किया सुभद्रा भी कान लगा कर सुनने लगी।

"मेरे पिता का नाम आनन्दशंकर था। नहीं मालूम कि वे इस समय जीवित है या मर गये। मेरे पिता एक बहुत बड़ी जमीदारी के मालिक थे। विलासपूर मे उनकी एक बहुत बड़ी कोठी थी। अब वह कोठी भी न जाने किस अवस्था मे है। आज मुझे घर छोड़े पूरे दस वर्ष हुए, इस बीच में मुझे नहीं मालूम कि मेरे घर मे क्या २ परिवर्तन हुये!"

तात्पश्चात युवक ने थोड़ी देर रुक कर कहा, कथा बड़ी लम्बी है परन्तु जहाँ तक होगा मैं थोड़े ही मे समाप्त करूँगा नहीं तो बहुत समय लगेगा। अच्छा सुनो, इतना कह कर उसने फिर कहना प्रारम्भ किया—

अपनी माता के हम केवल दो संतान थे। एक मैं और दूसरी मेरी एक बहिन। वह अवस्था मे मुझसे लगभग चार वर्ष छोटी थी। जिस समय वह दो वर्ष की थी उसी समय मेरी माता ने स्वर्ग को प्रस्थान किया। मेरी अवस्था उस समय ६ वर्ष की थी। माता के मरने पर हमारे पिता को बहुत बड़ा शोक हुआ

परन्तु वह शोक बहुत दिनों तक न रहा यद्यपि उनकी अवस्था उस समय चालीस वर्ष के लगभग थी परन्तु उन्होंने अपना दूसरा विवाह करने का निश्चय किया। जिस समय मैं आठ वर्ष का हुआ उसी साल उन्होंने पाँच हजार रुपया देकर शंकरपूर के एक मामूली काश्तकार दुर्जनसिंह की सोलह वर्ष की लड़की से शादी की।

हाय! उसी दिन से हम लोगों के दुःख का बीजारोपण हुआ। पिता की अवस्था अधिक होने के कारण वह दुष्टा उनसे संतुष्ट न रह सकी। यहाँ तक कि उसके अत्याचार की मात्रा इतनी बढ़ चली कि चारो ओर इसकी चर्चा फैल गई। परन्तु तिस-पर भी न जाने क्यों पिता उसके ऐसे वशीभूत थे कि उनको इन सब बातों का ध्यान भी न हुआ। हम लोगों के प्रति भी उनका स्नेह दिन पर दिन घटता जाता था। बात बात पर वे हम लोगों को बेतरह पीटने लगते थे। जो कुछ वह दुश्चरित्रा कहती उसे वे कभी भी न टालते। उसकी काल के समान आँखों के सामने हम लोग सूख कर काँटा होने लगे।

कहते कलेजा कांपता है। जिह्वा थकित हो जाती है कि एक बार मैंने उसे अपने ही घर मे एक जार के साथ विहार करते हुये देखा। उस समय मेरी अवस्था दस वर्ष की थी। बालक तो था ही लज्जा के मारे वहाँ से चला गया परन्तु उस दुष्टा ने मुझे वहाँ से जाते हुए देख लिया। मैं नहीं जानता था कि मेरा उसमें क्या अपराध था, परन्तु उसी के लिये मुझे

क्या से क्या होना पड़ेगा, किन किन दुर्गतियों को झेलना पड़ेगा इसे भी मैं न जानता था।

अस्तु, उसी दिन से वह मुझे दुश्मन के समान देखने लगी पिता से उसने न जाने क्या क्या चुगली खाई। पिताजी ने बिना मुझसे कुछ पूछे और विचारे ही एक दिन मुझको डंडो से बेतरह पीटा। डंडो की चोट से शरीर के चमड़े छिल गये। उसी दिन मेरे हृदय मे ऐसी ग्लानि पैदा हुई कि मानो वे मेरे पिता न थे। और वह मेरा घर न था। बहिन का भी मैंने कुछ ख्याल न किया और चुपके से रात को उठ कर वहाँ से चल दिया।

घर छोड़ते समय मेरा कुछ ध्येय न था कि कहाँ और किस ओर जाऊँगा। आन्तरिक वेदना के कारण मेरे शरीर में भय का लेशमात्र भी संचार न था। यद्यपि उस समय मेरी अवस्था केवल दस वर्ष की थी परन्तु मैंने इसका कुछ भी ध्यान न किया। साथ में खाने पीने के लिये भी कोई सामान न लिया और लेता ही क्या, भला मेरा उस मे क्या था। शरीर पर एक फटे कुरते और एक मैली धोती के अतिरिक्त और कुछ न था। घर से निकल मैंने पास के एक रेलवे स्टेशन का मार्ग लिया। स्टेशन मेरे यहाँ से लगभग दो मील था। मैंने कई बार स्टेशन का रास्ता देखा था अतः बेधड़क वहाँ चला गया। स्टेशन पर जब पहुँचा तो क्या देखा कि पटरी से एक गाड़ी लगी है। मुझे क्या मालूम कि

यह गाड़ी कहाँ जायेगी। सच तो यह था कि मुझे किसी न किसी गाड़ी पर चढ़ना था जिसमें सबेरे किसी को मेरा पता न चल सके। अस्तु, बिना टिकट लिये मै भी झट गाड़ी मे सवार हो गया और एक कोने में दब कर बैठ रहा। मुझे यह न मालूम था कि मै कहाँ जा रहा हूँ।

अस्तु, गाड़ी चल पड़ी। उस समय मुझे यह मालूम हुआ कि मानों मै यमराज के हाथ से छूट गया। वेदना और आत्म-ग्लानि के कारण मेरा हृदय टुकड़े टुकड़े हो रहा था। मेरी उस समय की चित्त की वृत्ति का वर्णन करना कठिन है। धीरे २ मैं निद्रा देवी की गोद में पड़ सारी चिन्ताओं से मुक्त हो गया। जब आँख खुली तो क्या देखा कि गाड़ी खड़ी है। बहुत से लोगों को उतरते देख मैं भी गाड़ी से नीचे उतर पड़ा। उस भीड़ मे किसी ने मुझसे टिकट न मांगा।

बाद को मुझे मालूम हुआ कि मैं कलकत्ते मे था। इस समय भूख और प्यास के कारण मेरा बुरा हाल था। मैने एक बाबू को धनी जानकर उनसे कहा—'बाबू' मै भूखा हूँ, यदि कुछ पैसे दो तो मै तुम्हारी गठरी ढो दूँ।

बाबू ने मेरी ओर ग़ौर से देख मुझे अपने पास बुलाया और मेरा नाम पूछा। मैने उत्तर दिया—चन्द्रपाल।

इस पर उन्हो ने मुझे अपने साथ चलने का संकेत किया। गठरी ढोने के लिये एक कुली को ठीक किया और मुझे भी साथ लेकर एक चौड़ी सड़क से चलने लगे। रास्ते मे मेरे

लिये मिठाई खरीद दी। भूख के शान्त होने पर मेरी जान में जान आई। इसके पश्चात् उन्हों ने मेरे विषय में पूछना प्रारंभ किया। मैंने अपना सारा हाल ज्यों का त्यों कह दिया।

तब से मैं उन्हीं के साथ था। वे भी मुझे अपने पुत्र की भाँति प्यार करते रहे। यदि मैं घर लौट आने की सूचना प्रकट करता तो वे मुझे कभी भी न रोकते परन्तु मुझे घर आना स्वीकार न था। अतः मैं भी प्रसन्न होकर उन्हीं के साथ रहने लगा।

इस प्रकार मैं वर्षों उनके साथ रहा। धीरे धीरे मैं भी उन्हीं को अपना पिता समझने लगा। वे कोई सामान्य पुरुष न थे। उनके विषय में मुझे केवल इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि वे एक धनी व्यौपारी थे। कलकत्ते में उनका बहुत बड़ा मान भी था।

अभी थोड़े दिन हुये कि कलकत्ते मे हिन्दुओं और मुसलमानों में बड़ा भारी दंगा होगया। सैकड़ों हिन्दू और मुसलमान मारे गये। कितने ही बने घर बिगड़ गये। इसी झगड़े में मेरे स्वामी की मृत्यु हुई। मैंने स्वामी को बचाने के लिये अपने प्राणों की ममता छोड़ कितने ही मुसलमानों को यमपुरी पहुँचाया। परन्तु मुझे नहीं मालूम कि मैं कब घायल होकर अचेत हो गया, जब आंखें खुलीं तो देखा मुसलमानों ने उनके घरको भी लूट लिया है। किसी प्रकार मैं वहाँ से भाग निकला।

स्वामी के मर जाने के पश्चात् मुझे एक बार अपने छूटे

हुये घर और पिता की याद पड़ी। अपनी छोटी बहन को मैं बहुत प्यार करता था। उसकी याद मुझे और भी बेचैन करने लगी। उसकी मुखाकृति तुम्हारी ही जैसी थी। यदि वह इस समय जीवित होगी तो तुम्हारी ही जैसी अवस्था और तुम्हारी ही जैसी शकल की होगी। इतना कह कर सुभद्रा के मुख की ओर ध्यान पूर्वक देखने लगा। उसके मुख पर उसे एक प्रकार की आकुलता सी दीख पड़ी। युवक ने फिर कहना प्रारम्भ किया।

मेरी पुरातन स्मृति जागृत हो उठी। मुझे अपने गांव घर का पता भूला न था। एक बार जन्मभूमि के दर्शन की उत्कंठा से प्रेरित हो मै घर की ओर चल पड़ा। मार्ग मे मुझे कुछ मुसलमानों से संग्राम करना पड़ा। वे आतताई गायों को डंडों से पीटते चले जा रहे थे। मैंने उन दुष्टों से गायों की रक्षा करना चाहा परन्तु मैं अकेला था और वे कई। आखिर उनके सामने मेरी हार हुई। मुझे पकड़ कर उन्होंने उसी जंगल मे जिसमें से होकर वे जा रहे थे एक वृक्ष के साथ बांध दिया संयोग से एक युवती स्त्री ने अथवा देवी ने मेरी प्राणरक्षा की, परन्तु वह भी अदृश्य होगई। किसी किसी भाँति सबेरा होने पर मैं जंगल के बाहर हुआ। इसके बाद का हाल तुम्हें मालूम है। यही मेरी कहानी है। मेरे जीवन की अभी और भी घटनायें हैं परन्तु उनके कहने का समय नहीं है। अपनी कथा समाप्त कर वह युवक चुप हो रहा।

वह विधवा युवती जो अब तक चुप थी बड़ी उत्कण्ठा के साथ उस युवक की ओर देखती हुई बोली—क्या तुम्हारी उस छोटी बहिन का नाम सुभद्रा था ?

युवक ने शीघ्रता के साथ उत्तर दिया—हाँ, उसका नाम सुभद्रा ही था।

इतना सुनते ही सुभद्रा व्याकुल हो उस आहत युवक के पैरों से लिपट गई और बोली—"भैया ! तुम्हारी वह छोटी बहिन सुभद्रा यही अभागिनी है।" उसकी आँखों से आंसुओं की धारा बह चली। युवक ने भी अपनी छोटी बहिन सुभद्रा को उस दशा में देख रोना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार बहुत देर के पश्चात् उन दोनों ने आँसुओं द्वारा अपने हृदय की चिर-वेदना को दूर किया। जब चित्त कुछ शांत हुआ तो युवक ने कहा—बहिन, सुभद्रा ! तुम्हें इस दशा में देख कर मेरा हृदय फट रहा है। ईश्वर ने सयोगवश मुझे यहां लाकर तुमसे मिला दिया। इसके लिये मैं उसे बारम्बार धन्यवाद देता हूँ। आज मैंने तुम्हें पाकर सब कुछ पा लिया।

सुभद्रा ने आँसुओं को पोछते हुए कहा—भैया ! तुमने मुझ अभागिनी पर इतने दिनों के बाद दया की। इस बीच में मुझे जो जो यातनायें झेलनी पड़ी उन्हें मैं कहाँ तक गिनाऊँ !

चन्द्रपाल ने कहा—हाय ! मुझे क्या मालूम था 'कि जंगल के पास लकड़ी बीनने वाली मेरी बहिन सभद्रा ही है।'

सुभद्रा ने कहा—हाँ भैया ! और मुझे भी यह नहीं मालूम था कि जिस आहत युवक को मैं हाथ का सहारा देकर अपने साथ ले आई हूँ वह मेरे भाई चन्द्रपाल हैं।

इसके पश्चात् दोनों में वहुत देर तक बात हुई। परमात्मा ने सुभद्रा की सहायता के वदले उसके भाई से उसकी भेंट करा दी। आज वहुत दिनों से विछुड़े भाई और बहिन के अचानक मिलने पर उनके आनन्द की सीमा न रही।

कुछ देर के बाद चन्द्रपाल ने घर का हाल पूछा। सुभद्रा ने कहा—भैया ! घर का हाल क्या पूछते हो ? हमारी वह दुष्टा सौतेली माँ पिता को छोड़ कर किसी जार के साथ चली गई। तब से आज तक उसका कुछ पता न चला। पिताजी अब अकेले बैठे राम के नाम की मनियां जपा करते हैं। उस दुष्टा के गर्भ से एक लड़का भी हुआ था वह भी मर गया।

इस प्रकार बात चीत कर चुकने के बाद सुभद्रा ने प्रेमपूर्वक चन्द्रपाल को भोजन वगैरह कराया। अब यह बात विरेचना तथा कमलापति एवम् गाँव वालों को भी मालूम हो गई कि वह आहत युवक और कोई नहीं सुभद्रा का भाई है। परिचय हो जाने पर जी जान से सुभद्रा ने भाई की सेवा सुश्रूषा करना आरंभ किया। यद्यपि विरेचना दुष्ट स्वभाव की थी परन्तु जब उसने जाना कि चन्द्रपाल सुभद्रा का भाई है तो उसने भी सुभद्रा को कहना सुनना बन्द कर दिया। सुभद्रा की सेवासे चन्द्रपाल बहुत शीघ्र आराम हो चला। धीरे २ वह अपने सहारे चलने फिरने लगा।

एक दिन संध्या समय उसने एकान्त में सुभद्रा से कहा—बहिन ! इसी अवस्था मे तेरा यह वैधव्य वेष देखकर मेरा हृदय फट रहा है। परन्तु मेरी आत्मा कह रही है कि तू विधवा नहीं है। अवश्य तेरा पति अभी जीवित है। यदि परमात्मा करेगा तो वे अवश्य शीघ्र ही तुझे मिलेंगे।

भाई की बातों को सुनकर सुभद्रा बड़े ही आश्चर्य में पड़ गई। उसके मुख पर प्रसन्नता की झलक दौड़ गई। उसने सतृष्ण नेत्रो से चन्द्रपाल की ओर देखते हुये कहा—

भैया ! परमात्मा तुम्हारी बातों को सत्य करे। परन्तु मुझे इस पर विश्वास नहीं होता। भला तुम ऐसी बातें किस आधार पर कह रहे हो ?

चन्द्रपाल ने कहा—मेरा हृदय इस बात की गवाही देता है। मैं उनका पता लगाऊंगा। किस आधार पर मैं ऐसा कहता हूँ उसकी कथा पीछे कहूँगा। जाओ तुम भी कुछ खाओ पियो। यदि ईश्वर करेगा तो मेरा कहना सत्य होगा।

यद्यपि सुभद्रा की भाई के पास से जाने की इच्छा न थी, और वह चन्द्रपाल के मुह से यह सुनना चाहती थी कि उसके भाई को उसके पति को जीवित होने का भ्रम क्यों है, परन्तु चन्द्रपाल के बहुत कहने पर वह वहाँ से चली गई। चन्द्रपाल भी मुँह ढाँप कर सो रहा।

११

जगदीशचन्द्र की नीचता ।

जगदीश चन्द्र का मकान रायपुर ज़िले के अन्तर्गत ही शंकरपुर ग्राम मे है । शंकरपुर के ज़मीदार भी जगदीशचन्द्र ही है । इनकी स्त्री सुलोचना को कुछ दिनों तक कोई संतान पैदा न हुई । इसी चिन्ता मे पड़ कर वे बहुत व्याकुल होने लगे । एक बार इन्होने कुछ हबशियो के साथ एक सुन्दर बालक को देखा । बालक की मुखाकृति से इन्होंने समझ लिया कि अवश्य यह किसी अच्छे कुल का है । हबशी लोग भले घर की लड़कियाँ

और लड़कों को मिठाई इत्यादि का प्रलोभन दे अपने साथ बहका ले जाते हैं। ये लोग टिक कर एक जगह नहीं रहते, सदा एक देश से दूसरे देश में भ्रमण किया करते हैं। भिक्षा द्वारा ही ये अपना निर्वाह करते हैं। कभी २ खेल तमाशा दिखा कर कुछ पैसा कमा लेते हैं। यदि कोई इनसे किसी बालक या बालिका को खरीदना चाहता है तो उचित मूल्य पाकर ये उसके हाथ बेच देते हैं। अस्तु, हमारे जगदीशचन्द्र ने भी उस बालक को हबशियों के हाथ से खरीद लिया। इसी बालक को वे पुत्र की भांति प्यार करने लगे। वह बालक भी जगदीशचन्द्र ही को अपना पिता समझने लगा।

अब उनके घर में केवल उनकी स्त्री सुलोचना और उस बालक को छोड़कर दूसरा कोई न था। यह बालक और कोई नही वीरसिंह हैं जिनका वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं। वीरसिंह का जैसा नाम है वैसे ही उन मे गुण भी है। अस्त्र शस्त्र के संचालन में भी वे इतने निपुण हो गये हैं कि चार छ का अकेले मुकाबिला कर सकते है। जगदीशचन्द्र के घर मे उन्हे किसी बात की कमी नहीं है। उसे वे अपना ही घर समझते हैं।

जिस समय जगदीशचन्द्र ने बीरसिह को हबशियों के हाथ से मोल लिया उस समय वीरसिह की अवस्था प्रायः चार साल की थी। ईश्वर की इच्छा कि उसी साल सुलोचना के गर्भ से भी एक पुत्री पैदा हुई। इस बालिका के कमल के समान सुन्दर मुख को देख कर माता पिता ने इसका नाम

पद्मावती रक्खा। पद्मावती जब कुछ बड़ी हुई तो वीरसिंह और पद्मावती दोनों मिलकर साथ साथ खेलने लगे। पद्मावती के पश्चात् सुलोचना की और कोई संतान पैदा न हुई। यही कारण था कि वह भी वीरसिंह को अपना पुत्र समझने लगी। वीरसिंह और पद्मावती भी एक दूसरे को भाई बहिन की भाँति प्यार करने लगे। दोनों ही अपने खेल कूद द्वारा जगदीशचन्द्र के घर की शोभा बढ़ाने लगे। जब वे बड़े हुये तो उनमें वह भाई बहिन का प्रेम जिस प्रकार अपना रूप बदलने लगा उसका वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं।

जगदीशचन्द्र कोई सामान्य ज़मीदार न थे। घर मे सैकड़ों नौकर थे। पक्की कोठी और भारी कारबार था। सरकार के घर मे भी उनका बड़ा मान था। वे सदा सरकारी कर्मचारियो का स्वागत करने में सबसे आगे रहते थे। यद्यपि उनमे बहुत से गुण भी थे परन्तु एक दोष उनमे बहुत बड़ा था और उसी एक दोष के कारण उनके सारे गुण छिप गये थे। वे मान प्राप्त करने के लिये सब कुछ करने को तैयार थे। द्वेष उनमें इतना भरा था कि किसी को अपने से बढ़ कर नहीं देखना चाहते थे। दूसरे की घटती और अपनी बढ़ती पर प्रसन्न होते थे। औरों की अपने सामने प्रशंसा सुनकर वे जल भुन उठते थे। यही कारण था कि उनके खास लोग भी भय के कारण मुँह पर तो उनकी प्रशंसा करते परन्तु परोक्ष में सदा उनकी निन्दा ही किया करते।

सरकार ने राय गंगासिंह को राय की पदवी दी परन्तु हमारे जगदीशचन्द्र लाख चापलूसी और सिफारिश करने पर भी राय की पदवी से वंचित रहे। यह बात उनके हृदय में हर क्षण खटक रही थी। इसी कारण वे राय गंगासिंह से मन ही मन जला करते थे, द्वेष के कारण हर क्षण उनका हृदय सुलगा करता। वे निरंतर यही उपाय सोचने लगे कि किस प्रकार उनके प्रतिद्वन्दी का अनिष्ट हो। यद्यपि रायसाहब ने उनका कुछ भी न बिगड़ा था परंतु जगदीशचन्द्र की नीच प्रकृति ने अकारण ही उनको अपना शत्रु मान लिया। सरकार का तो वे कुछ बिगाड़ न सकते थे; रायसाहब के पाये हुये सम्मान पर ही दांतो ऊँगली काटने लगे।

उसी बकराईद के अवसर पर जिसका वर्णन हम ऊपर कर कर चुके हैं उन्होंने अपनी नीच प्रकृति का पूरा परिचय दिया। राय साहब के कैद किए जाने का हुक्म सुन कर वे मन ही मन बहुत प्रसन्न हुये। इतना ही नहीं बल्कि कलक्टर साहब से इस बात की सिफारिश भी करने लगे कि रायसाहब अवश्य बंदी बना लिये जायँ। उन्हों ने इस कार्य में सरकार की पूरी सहायता करने का बचन भी दिया।

उन्हें इस बात की आशा थी कि यदि वे इस कार्य में सफल हुये तो सरकार उनसे प्रसन्न होकर अवश्य उन्हें राय की पदवी से सुशोभित करेगी। राय जगदीशचंद्र होने के लिये वे सब कुछ करने को तैयार थे।

यह हम ऊपर कह चुके हैं कि राय गंगासिंह के पकड़ने के लिये सरकार ने एक हज़ार रुपया इनाम देने की घोषणा की है। हमारे जगदीशचन्द्र को एक हजार रुपये का तनिक भी लोभ न था, बल्कि वे तो एक हज़ार के बदले दो हज़ार अपने पास के देने को तैयार थे। उनकी तो यह इच्छा थी कि किसी प्रकार राय साहब उन्हीं की सहायता से पकड़े जायँ जिसमे सरकार के सामने वे अपने को सरकारी हितैषी साबित कर सकें। इधर तो मुसम्मात स्वयम् राय साहब के ढूढ़ने का जी जान से प्रयत्न कर रहे थे और उधर हमारे जगदीशचंद्र भी उनकी खोज में लग गये।

जब उन्हों ने यह समाचार सुना कि उनकी स्त्री और लड़की भी घर से गायब हो गईं तो उनके हृदय में एक और बात आई। उन्हों ने सोचा कि किसी प्रकार यदि उनकी स्त्री और लड़की पकड़ ली जायँ तो सभव है कि रायसाहब का भी पता लग जाय। स्त्री और लड़की पर विपत्ति देख राय साहब उनकी रक्षा के लिये स्वयम् अपने को प्रकट करने में विलम्ब न करेंगे।

परंतु ऐसा करना नीति के विरुद्ध था। जगदीशचंद्र ने अपना यह विचार कलक्टर साहब के समक्ष प्रकट किया। पहले तो कलक्टर साहब ने इसे अस्वीकृत किया परंतु अंत मे जगदीशचंद्र के बहुत जोर देने पर उन्हों ने भी अनुमति दे दी। कलक्टर की आज्ञा पाकर जगदीशचंद्र ऐसे प्रसन्न हुये

मानों उन्हें राय की पदवी मिल गई। उन्हें पूरा विश्वास था कि स्त्री और लड़की के कैद होने पर राय गंगासिंह अवश्य अपने को प्रकट कर देंगे।

अस्तु, आज्ञा पाते ही उन्हीं ने इस बात की घोषणा कर दी कि जो रायसाहब की स्त्री और लड़की को मेरे पास लावेगा उसे पाँच हजार रुपया इनाम दिया जायगा। बात की बात मे यह समाचार चारों ओर फैल गया। बहुत से लोग रुपये के लोभ में पड़ कर सुरुचि और शीलावती को ढूंढ़ निकालने का प्रयत्न करने लगे।

इधर जगदीशचन्द्र भी सफलता प्राप्त करने की आशा में बैठे बैठे दिन गिनने लगे। मान प्राप्त करने की उच्चाकांक्षा के वशीभूत हो उन्होंने जैसा नीच कार्य करने पर पैर रक्खा उसे लिखने मे लेखनी थर्राती है। जिस राय गंगासिंह ने गायों की रक्षा और देश की सेवा में अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया उन्हीं राय गंगासिंह को केवल सरकार का हितैषी बनने के लिये उन्होंने अपने देश हित और धर्म की कुछ भी परवाह न कर कैद कराना चाहा। हे परमात्मा! भला ऐसे स्वार्थियों के रहते हुए हमारी जननी जन्मभूमि का उद्धार होना कब संभव है?

१२

सन्यासी की भेंट

हम यह ऊपर कह चुके हैं कि आबिद की हत्या करने के बाद जब वह युवती गायों को खोलने लगी तो उसी समय तीन चार मुसलमानों ने आकर उसे पकड़ लिया परन्तु साथ ही बाहर से "मारो, मारो जाने न पावे" की आवाज़ आई। आवाज़ के साथ ही दो विशाल मूर्तियाँ वहाँ आ उपस्थित हुईं। युवती ने देखा कि इनका सारा शरीर लाल रंग के वस्त्र से ढँका था। इनके हाथों मे तलवारें चमक रही थीं। उन्होंने उन मुसलमानों पर आक्रमण किया। अचानक इन दोनों

के आजाने से पहले तो मुसलमान अवाक होगये परन्तु फिर उस युवती को छोड़ लड़ने पर तैयार होगये। अब तो उसी बाड़े मे जहां गायें बाँधी थीं, हत्याकाण्ड उपस्थित हो चला। जिन गायो के बंधन उस युवती ने पहिले ढीले किये थे वे तो पहले ही भाग गईं परन्तु जो बची थीं वे भी रस्सियाँ तोड़ ताड़ कर इधर उधर भागने लगीं। जिस समय मुसलमान उन आगंतुकों से युद्ध करने मे संलग्न हो अपनी जान बचाने की चिंता मे पड़ गये उसी समय युवती ने वहाँ से छिपकर अपना रास्ता लिया, उसे तो अपनी ही रक्षा की चिता थी फिर उसे इतना समय कहाँ कि ठहर कर अंतिम परिणाम की प्रतिक्षा करे।

वहाँ से निकल कर युवती ने एक ओर का मार्ग लिया। उसे यह सोचने का अवकाश कहाँ कि वह किधर जा रही है। जल्दी जल्दी पैर बढ़ाती हुई वहाँ से कुछ दूर निकल गई। जब भय के कम होने से चित्त कुछ शांत हुआ तो ठहर कर सोचने लगी—"हे परमात्मा, किधर चलें ? घर का भी तो कुछ पता नहीं है। ऐसा न हो कि फिर किसी विपत्ति मे पड़ जाऊँ। जान पड़ता है उस दिन जो मैंने श्री महादेव जी की पूजा के निमित्त लाये हुये जल से उनकी पूजा न की उसी का यह फल है। हे भगवन्! मेरे अपराध को क्षमा करो, मुझ अबला को अब और अधिक संकट मे न फँसाओ।"

इसी प्रकार प्रार्थना करती हुई वह और आगे बढ़ी। जब उसे यह निश्चय होगया कि वह आबिद के घर से बहुत दूर

आगई तो उसने किसी वृक्ष के नीचे रात बिताने का निश्चय किया। कुछ दूर पर उसे एक वृक्ष देख पड़ा। बेचारी वहीं जाकर पृथ्वी पर सो रही और लगी मन ही मन परमात्मा का ध्यान करने। थकी तो थी ही लेटते ही निद्रा आगई।

जब सवेरा हुआ और आँख खुली तो उसने क्या देखा, कि एक सन्यासी उसके सामने खड़ा है। युवती जो अब तक पृथ्वी पर लेटी थी सन्यासी को देखते ही उठ कर बैठ गई।

उसने देखा कि सन्यासी की अवस्था लगभग पचीस वर्ष थी। उसके गौर-वर्ण पर गेरुआ वस्त्र बहुत ही सुन्दर देख पड़ता था। माथे में त्रिपुंड और गले में तुलसी की माला थी, दाहिने हाथ मे एक कमंडल और बाएँ हाथ मे एक सँड़सा था। उसके विशाल नेत्रों से एक प्रकार की ज्योति निकल रही थी।

उस युवती ने इसी वेष और इसी मुखाकृति का एक सन्यासी पहले भी देखा था जिसे वह अब तक भी न भूली थी उसने चट पहिचान लिया कि यह तो वही सन्यासी है जिसने उस संकट के समय पत्र देकर मुसलमानो से उसकी और उसकी माता की रक्षा की थी।

सन्यासी ने युवती को आश्चर्य मे देख कर कहा—शीलावती! अब तुम्हे किसी बात का भय नही है। मुझे देख कर आश्चर्य मत करो। हम सन्यासी हैं, हम लोगों का कोई घर बार नहीं, इसी से यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ भ्रमण किया करते हैं।

शीलावती ने कहा—तुमने उस पत्र द्वारा मेरे ही घर का गुप्तभेद जो मुझे बताया था उसके लिये हमारा रोम रोम तुम्हारा कृतज्ञ है। इस संकट के समय भी तुमने मुझे दर्शन देकर कृतार्थ किया।

सन्यासी—तुम्हारे पिता ने मुझे वह गुप्तभेद बताया था नही तो भला मुझे उसका हाल क्या मालूम? मुझे तुम अपने पिता का एक तुच्छ सेवक जानो। यह मत समझो कि हम लोगो को तुम्हारी रक्षा की चिन्ता नहीं है। जिस दिन आबिद तुम्हें पकड़ कर अपने घर लाया उसी दिन हम लोगों को इस बात का पता चल गया कि मुसलमानों ने किसी हिन्दू लड़की को अपने घर में ला रक्खा है। यद्यपि हम लोगों को यह न मालूम था कि वह हिन्दू लड़की राय गंगासिंह की पुत्री शीला वती ही है तौ भी हम लोगों ने धर्म की रक्षा के लिये प्राणपण से तुम्हारी सहायता करने का निश्चय किया। हम और तुम्हारे पिता दोनों ही तुम्हारा पता लगाने के लिये चोरों की भाँति उस गाँव मे जिसमें तुम कैद थी चक्कर देने लगे। आखिर चिल्लाने का शब्द सुन कर हम लोग आबिद के घर की ओर गये। इतने मे गायों के बाड़े मे मनुष्यों का कोलाहल सुन जो उधर गये तो मुसलमानों के हाथ मे तुम्हें देख समझ गये कि हो न हो यह वही हिन्दू लड़की है जिसकी रक्षा के निमित्त हम लोग उद्योग कर रहे थे। चन्द्रमा की चाँदनी में मेरी निगाह जो तुम्हारे मुख पर पड़ी तो मैं झट पहचान गया।

तुम्हारे पिता ने भी तुम्हें पहचान लिया। परन्तु तब तक हम लोग संशय में थे। तुम्हें यहाँ इस दशा में देख अब मुझे निश्चय हो गया कि जिसकी हम लोगों ने रात में रक्षा की, वह तुम्हीं हो। जब हम लोगों को निश्चय हो गया कि तुम वहाँ से भाग कर कुछ दूर आ गई होगी तो हम लोग भी और मुसलमानों को अपनी ओर आते देख पकड़े जाने के भय से भाग खड़े हुये। फिर हम लोगो ने तुम्हें ढूँढ़ने का निश्चय कर दो ओर का मार्ग लिया। तुम्हारे पिता तो दूसरी ओर चले गये परन्तु हम ढूढ़ते २ यहाँ आ निकले। इस वृक्ष के नीचे पहुँच कर देखा तो तुम सो रही थी। अब तुम किसी बात का भय न करो। इस समय मैं तुम्हें तुम्हारे पिता के पास नहीं ले चल सकता, परन्तु हाँ, किसी सुरक्षित स्थान में अवश्य पहुँचा दूँगा।

शीलावती ने कहा—हाय! मैं बड़ी ही अभागिनी हूँ जो उस समय मैंने अपने पिता को न पहिचाना। यदि तुम मुझे मेरी माता के पास पहुँचा दो तो मै तुम्हारा बड़ा उपकार मानूँ। यद्यपि पिता के देखने के लिये मेरा चित्त व्याकुल हो रहा है परन्तु ऐसा करने के लिये मै नहीं कह सकती क्योंकि उनका प्रकट होना उनके लिये मौत का सामना है।

सन्यासी ने कहा—इस समय तुम अपनी माता से बहुत दूर हो। तुम्हें वहाँ लेकर चलना अपने को जोखम मे डालना है। मैं किसी समय वहाँ जाकर तुम्हारा सारा हाल उनसे कह दूँगा।

शीलावती—तो इस समय मुझे कहाँ ले चलोगे ?

सन्यासी—तुम्हारे मामा का घर यहाँ से बहुत निकट है। यद्यपि मैं वहाँ तक नहीं जा सकता परन्तु इतनी दूर तक तो अवश्य पहुँचा दूँगा कि तुम निर्विघ्न वहाँ तक पहुँच जावो। उठो विलंब करने मे भय है। कहीं ऐसा न हो कि हम दोनों को किसी दुश्मन के हाथ पड़ जाना पड़े।

शीलावती सन्यासी की बात सुनकर उठ खड़ी हुई। तद-नन्तर आगे आगे सन्यासी और पीछे पीछे शीलावती, दोनों चुपचाप दक्खिन की ओर चलने लगे। दोनों अपने ही विचार में मग्न चले जाते थे कि इतने में उनसे थोड़ी दूर पर कई मनुष्यों का कोलाहल सुन पड़ा, जिसे सुनते ही वे चौंक उठे।

१३

कर्तव्य पथ पर आरूढ़

जिस दिन सुरुचि और शीलावती घर से ग़ायब हुईं उसके थोड़े ही दिन बाद मुहम्मद हुसेन खाँ की लड़की फातिमा की शादी सलावतपुर के एक मुसलमान के साथ जिसका नाम करामत खाँ था हो गई। ब्याह हो जाने के बाद वह अपने शौहर के घर चली गई।

सलावतपुर विश्रामपुर से लगभग चार मील दूर है। सलावतपुर के थोड़ी ही दूर पर एक छोटी सी नदी है। यह नदी है

तो छोटी परन्तु इसमें बारहो महीना जल रहता है। जल इतना निर्मल है कि देखकर अनायस ही मुँह हाथ धोने की इच्छा हो जाती है। इस नदी से थोड़ी दूर पर एक घना जंगल देख पड़ता है। यह जंगल कितना लंबा चौड़ा है इसे हम नहीं कह सकते। यह नदी भी इसी जंगल के बीच से होकर बहती है। नदी के किनारे २ थोड़ी दूर जाने के बाद जंगल इतना घना हो जाता है कि आगे चलना कठिन हो जाता है। पाठक कष्ट करके हमारे साथ इसी जगल मे थोड़ी देर चलें।

उस घने जंगल में होकर लगभग एक मील जाने के पश्चात् एक छोटा सा टीला देख पड़ता है। इसी टीले के आस पास मनुष्यो के पैर के चिन्ह देख कर यह निश्चय हो जाता है कि यह जगल भी मनुष्यो से विहीन नही है, अवश्य कोई न कोई यहाँ आता जाता रहता है। इसी टीले के चारो ओर छोटी २ गुफायें है जिनमे मनुष्यो के रहने का सन्देह होता है। जगह २ लकड़ियाँ रक्खी है और आग जलाने के कारण जगह जगह राखियों का ढेर लगा है। जान पड़ता है यहाँ एक या दो से अधिक मनुष्य रात्रि के समय शीत से अपनी रक्षा करते है। यह लो, दो आदमी आपस मे बात करते हुए एक गुफा के भीतर से निकले और नदी के किनारे २ जंगल के बाहर की ओर चले। दोनो देखने मे सन्यासी जान पड़ते हैं। चलो छिप कर सुने कि वे लोग आपस मे क्या बातें करते हैं।

पहला—अचलसिंह! तुम पर मेरा परा विश्वास है और

तुम्हारी बातों का मुझे बहुत बड़ा भरोसा भी है। अब यह कार्य्य तुम्हारे सपुर्द है। जहाँ तक हो सके प्रयत्न करने मे उठा मत रखना। तुमने मेरा गुप्तस्थान भी देख लिया है। जब तुम मुझे ढूँढ़ोगे यहीं पावोगे। मेरा सन्देश हर एक हिन्दू के कान कान में पहुँच जाय। बस, मेरी यही इच्छा है।

अचलसिह—मौसा ! मैं ज़ी जान से प्रयत्न करूँगा, भला धर्म के कार्य मे भी क्या पीछे रह सकता हूँ ? देखते ही देखते गुप्त रीति से इतना बड़ा दल इकट्ठा करूँगा कि देखने वालों के छक्के छूट जायँ। क्या हिन्दुओं मे धर्म के नाम पर मरने वाले इतने भी वीर बाकी नहीं हैं ?

पहला—जानते हो किसका सामना है ?

अचलसिह—हाँ, जानता हूँ। धर्म का अधर्म से युद्ध है। अन्यायी सरकार के सामने निश्शस्त्र हिन्दुओं को सिर उठाना है। गो-हत्यारों के हाथ से गोमाता का उद्धार करना है।

पहला स०—हाँ, और यह कार्य केवल सन्यासियों द्वारा हो सकता है। जिनको घर से मोह नहीं, बेटा बेटी से प्रेम नही, धन धान्य में लोभ नहीं, स्त्री मे प्रेम नहीं, वे ही इस धर्म के कार्य में हाथ बंटा सकते हैं। जो ऐसे सन्यास को स्वीकार करें कि जिन्हें प्राण देने और लेने मे तनिक भी भय न हो वे ही इन नर पिशाचो द्वारा गायों की रक्षा कर सकते हैं अन्यथा इस कार्य को पूरा करना कठिन ही नहीं अत्यन्त दुस्तर है।

अचलसिंह--हाँ, तो घर घर जाकर गोमाता की दीन पुकार सुनाऊँगा और ऐसे ही सन्यासियों का दल इकट्ठा करूँगा।

पहला स०—अच्छा बेटा, जाओ। समय २ पर मुझसे मिल लिया करना। ईश्वर इस कार्य मे तुम्हारी सहायता करे।

बहुत अच्छा कहकर अचलसिंह ने उस दूसरे सन्यासी को प्रणाम किया और एक ओर को चला गया।

उसके चले जाने पर वह सन्यासी कुछ दूर उसी नदी के किनारे २ जा एक टीले पर इस प्रकार बैठ गया मानो किसी के आने का मार्ग देख रहा हो।

उस सन्यासी को वही बैठे छोड़ कर ज़रा हम लोग उस नदी के जल की ओर चलें। अभी सबेरे का समय था। चार, पांच औरतें इसी समय नदी के किनारे घड़ा और अपनी अपनी धोती रख जल मे स्नान कर रही है। कभी उछलती हैं और कभी कूदती हैं। एकही अवस्था की होने के कारण ये सब आपस में हँसी दिल्लगी भी कर रही है। इस प्रकार सब मिल कर कल्लोल करती हुई कभी गहरे पानी में जाती है और कभी किनारे ही पर आकर तैरती हैं।

सन्यासी जो वहाँ से कुछ दूर पर बैठा था यह सब तमाशा देख रहा था। इतने मे उसने क्या देखा कि एक स्त्री गहरे जल मे चली गई और तैरना न जानने के कारण लगी डूबने। उसको डूबते देख दूसरी भी उसे बचाने के लिये जल मे कूद पडी। बचाने को कौन कहे वह भी लगी उसी पहिली के साथ डूबने

और उतराने। कभी वह नीचे जाती थी तो कभी वह। यह देख तीसरी, चौथी और पांचवीं भी उन दोनों को बचाने के लिये गहरे जल में चली गईं परन्तु उनकी भी वही दशा हुई जो दूसरी की हुई थी। सब की सब डूबने लगीं।

सन्यासी ने जब यह हाल देखा तो वह झट अपने स्थान से उठा और किनारे पर आया। वे पांचों डूबने वाली थीं कि वह फुर्ती से पानी में कूद उन सब को बाहर खींच लाया। सब एक दूसरी को पकड़े हुये किनारे आ गईं। पहले तो कुछ देर तक वे सब की सब किनारे पर बेहोश पड़ी रहीं परन्तु जब होश हुआ तो लगीं एक दूसरे का मुँह देखने।

सन्यासी ने उनमें से एक को पहचान कर कहा-फ़ातिमा! तू यहां कैसे? घर से इतनी दूर भला कैसे स्नान के लिये आई? तुझे देख कर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है।

वह डूबने वाली जो फ़ातिमा ही थी सन्यासी की ओर देख कर बोली-बाबा! तुम मुझे पहचानते हो परन्तु मैं तुम्हें पहचानने में असमर्थ हूँ। सिर्फ ऐसा जान पड़ता है कि मैने तुम्हें कहीं देखा है। मेरा व्याह यहीं पास के एक गाँव मे हुआ है। मैं यहाँ रोज़ नहाने के लिये आती हूँ लेकिन आज न जाने कैसे गहरे पानी मे चली गई और डूबने लगी। अगर तुम न होते तो हम सब की सब डूब मरतीं। खुदा ने ही तुम्हें हम लोगों की मदद करने के लिये भेजा है।

सन्यासी ने कहा—हाँ बेटी! नहीं तो भला मैं यहां क्यों कर

आता। अच्छा मैंने जो तुम लोगों की जान बचाई इसके बदले में मैं तुम लोगों से कुछ माँगना चाहता हूँ, क्या तुम लोग क़बूल कर सकती हो ?

फ़ातिमा—बाबा ! अगर क़बूल करने लायक बात होगी तो जरूर क़बूल करूँगी। मगर मैं तुम्हें पहचानते हुये भी नहीं पहचान सकती हूँ, इसलिये पहले तुम्हारा नाम सुनना चाहती हूँ।

सन्यासी-अगर तुम मेरा कुछ फायदा कर सकती हो तो बेशक मैं तुम्हें अपना नाम बता सकता हूँ मगर तुम्हें यह बात औरो से छिपाकर रखनी पड़ेगी।

ऐसा कहकर सन्यासी ने फ़ातिमा को दूर ले जाकर उसके कान में कुछ कहा। सन्यासी का कहना था कि झट फ़ातिमा सन्यासी के पैरों पर गिर पड़ी और बोली दादा ! मैं तुम्हें इस वेष में न पहचान सकी। बताओ, बहिन शीलावती और माँ सुरुचि का क्या हाल है।

सन्यासी ने कहा—इन बातों को अभी जाने दो। देखो यह भेद किसी पर मत प्रकट करना।

इतना कह कर वे दोनों फिर उन औरतों के पास आ गये। वे औरतें भी एक टक सन्यासी का मुँह देख रही थीं।

सन्यासी ने फिर कहा—अच्छा, अगर तुम्हें इसके बदले में मेरी बात मंजूर है तो जाओ, जब तक जिओ बेचारी बेजबान गौओं की रक्षा करो। उन्हें कटने से बचाओ।

सब ने सन्यासी की बात सुन कर एक स्वर से कहा—बाबा, तुमने हम सबकी जान बचाई। भला, तुम्हारी इतनी सी बात मानना कौन बड़ा मुश्किल काम है। आज से जहाँ तक होगा गायों का मारना बन्द करने की कोशिश करूँगी।

सन्यासी ने फिर फ़ातिमा की ओर देखकर कहा—बेटी! इसी जगह फिर तुमसे कभी मिलूँगा। अभी तुमसे मुझे बड़ा काम है। इस समय मैं यहाँ ज्यादा देर तक नहीं ठहर सकता। अब तुम लोग भी जावो।

इतना कहकर संन्यासी उसी नदी के किनारे २ जंगल की ओर चला गया। फ़ातिमा और उसके साथ की और स्त्रियाँ भी जल का घड़ा ले लेकर अपने अपने घर आई।
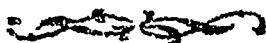
फ़ातिमा ने घर आकर करामत खाँ से सारा हाल कहा परन्तु यह भेद छिपा रक्खा कि वह सन्यासी कौन था। पाठक तो हमारे उस सन्यासी को पहचान ही गये होंगे फिर अभी उसके नाम लेने की कोई आवश्यकता नहीं। कौन जाने कोई सुन ले तो उस बेचारे के शिर पर न जाने कौन सी विपत्ति आ पड़े।

फ़ातिमा ने सन्यासी को गो रक्षा के विषय में जो बचन दिया था उसे भी करामात खाँ से कहा। करामात खाँ दिल का नेक आदमी था। उसे तो इस पैशाचिक काम से पहले ही से घृणा थी, परन्तु इसके विरुद्ध वह कुछ कह न सकता था। स्त्री की बात सुनकर बोला—जिसने तुम्हें डूबते हुये से बचा

कर एक बार फिर मुझे तुम्हारी इस भोली भाली सूरत के देखने का मौक़ा दिया उसकी बात को मानना जरूरी है। अच्छा, आज से मैं भी इस बात की कोशिश करूँगा कि जहाँ तक हो सके कोई गाय को कत्ल न करे। उस सन्यासी की बात मानना जरूरी और उसके एहसान का बदला चुकना भी लाज़िम है।

फ़ातिमा ने मनही मन कहा—अगर मेरे ज़रिये ऐसा हो जाता तो एक दफा बहिन शीलावती को फिर अपना मुंह दिखाने लायक हो जाती।

आवश्यक था। अतः इधर से उधर करवट बदल कर समय काटने लगी, पल वर्षों के समान हो गया। अन्त में उत्सुकता को न रोक सकी और सवेरा होने के पहले ही उठकर चन्द्रपाल के पास आई। देखा तो चन्द्रपाल मुँह ढाँपे सो रहे थे। विचार करने लगी कि जगाना भी उचित नहीं, करे तो क्या करे? किस प्रकार भाई के मुँह से पति के विषय में सुने? पास में पंखा पड़ा था आकुलतावश सुभद्रा पंखा लेकर चंद्रपाल को हवा करने लगी।

हवा के लगने पर चंद्रपाल की नींद जो खुली तो देखा कि सुभद्रा खड़ी खड़ी पंखा झल रही है। बहिन को इस प्रकार खड़ी देखकर चन्द्रपाल के नेत्रों से आँसू बहने लगा। भ्रातृ प्रेम से विह्वल होकर बोले—सुभद्रा! तू आज इतने तड़के ही क्यों आगई? क्या तुझे रात को नींद नहीं आई? तुम्हारे चेहरे से इतनी व्याकुलता क्यों प्रकट हो रही है? सुभद्रा ने शिर नीचा करके कहा—भैया! तुम्हें इस दशा में छोड़कर अधिक देर तक दूसरी जगह रहने का जी नहीं चाहता, इस दुखिया को सिवा तुम्हारे इस संसार में अब कौन सहारा देने वाला है। पति के विषय में तुम्हारे ही मुंह से कुछ सुन कर चित्त और भी चंचल हो रहा है। यह सुन चंद्रपाल ने एक लंबी साँस खींचकर कहा—"सुभद्रा जिस आधार पर मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि मुझे तुम्हारे पति के जीवित होने का सन्देह है उस कथा को मैं तुमसे आज कहना चाहता हूँ कि

ईश्वर करे मेरा सन्देह सत्य ठहरे। सुभद्रा ने अधीर होकर कहा—भैया ! हम लोगों की सहायता करने वाला केवल परमात्मा है, मैं भी उस कथा को सुनने के लिये व्याकुल हूँ।

चन्द्रपाल ने कहना प्रारम्भ किया—एक दिन जब मैं अपनी इसी दरिद्रावस्था मे अकेला ही एक ओर को जा रहा था कि मुझे कुछ दूर पर एक गॉव देख पड़ा। प्यास के कारण इच्छा हुई कि उसी गॉव में चलकर प्यास शान्त करूं। ऐसा विचार उस गॉव में गया और थका होने के कारण एक कुयें पर बैठ गया। इतने मे क्या देखा कि दो सिपाही सदर मार्ग से होकर जा रहे हैं। उनके साथ मे एक और आदमी भी था जिसके हाथो और पैरों मे बेड़ियॉ पड़ी थीं। वे सिपाही उस आदमी को लिये हुये उसी गॉव के निकट से होकर जा रहे थे। मैंने उस बँधे हुये मनुष्य को देखते ही यह समझ लिया कि वह अवश्य किसी अपराध के कारण उनका कैदी है।

गॉव के पास पहुँच कर वे सिपाही भी एक कुयें पर जल पीने के लिये बैठ गये। इतने में पास के घर से नौ दश वर्ष का बालक लिये हुये एक स्त्री निकली। उस स्त्री ने उसी रास्ते बहुत से क़ैदियो को जेल की ओर जाते देखा था। वह जानती थी कि मुसलमान और हिन्दुओं के दगे के कारण बहुत से हिन्दू क़ैद कर लिये गये हैं।

बालक ने उस स्त्री का ऑचल पकड़ कर कहा—मॉ ! ये सिपाही उस आदमी को क्यों पकड़े हैं।

माँ ने जवाब दिया—बेटा ! गाय की रक्षा करने के लिये इस आदमी की सजा हुई है।

लड़का—गाय की रक्षा करने के लिये सजा क्यों ? माँ ! हमारी गायों को कौन सी तकलीफ है ?

माँ—बेटा गायों को मुसलमान लोग मार कर उनका माँस खाते हैं।

लड़का—क्या मुसलमान गाय का दूध नहीं पीते ? मा ! वे हमारी गायों को क्यों मारते हैं ?

माँ—दूध पीते क्यों नहीं, मगर जब वे दूध देना बन्द कर देती हैं तो उसे मार डालते हैं।

लड़का—अच्छा तो हम भी गायों की रक्षा को जायँगे। माँ ! तुम हमारे लिये भी एक तलवार ला दो। हम गायों को मारने नहीं देंगे।

माँ—बेटा ! अभी तू लड़का है जब बड़ा होगा तो मैं तेरे लिये भी एक तलवार ख़रीद दूँगी।

एक सिपाही जो बैठा इन बातों को सुन रहा था बोल उठा—गायों की रक्षा करने के लिये जिस तरह आज इस नौजवान को फाँसी का हुक्म हुआ है उसी तरह तुम्हे भी फाँसी पर चढ़ना होगा।

लड़के ने कहा-कोई हरज नहीं, मैं फाँसी पर चढ़ जाऊँगा, मगर अपनी गायों को न मारने दूँगा।

लड़का अभी और कुछ कहना चाहता था कि माता

उसे लेकर घर के भीतर चली गई। वह लड़का वहाँ से जाना नहीं चाहता था परन्तु माता के आगे उसका कोई वश न चला।

मैंने देखा कि जो आदमी उन सिपाहियों का बन्दी था उसकी अवस्था मेरे ही लगभग थी। डील डौल में भी वह मेरे ही समान था। उसका प्रशस्त ललाट अत्यन्त तेजपूर्ण था। दोनों नेत्र भी बहुत ही विशाल थे। उस सिपाही के मुख से यह सुनकर कि इसे फाँसी का हुक्म हुआ है मेरा रोम रोम थर्रा उठा। ईश्वर से मन ही मन यही प्रार्थना करने लगा कि किसी प्रकार इस वीर की प्राण रक्षा हो।

अभी वे सिपाही जल पीकर निश्चिन्त भी नहीं हुये थे कि वहाँ एक सन्यासी आया। सन्यासी ने भी उन सिपाहियो से जल पीने की इच्छा प्रकट की। उनमें से एक सिपाही ने पहले तो सन्यासी को लोटे से जल खींच कर पी लेने को कहा परन्तु सन्यासी के यह कहने पर कि उसकी अँगुलियों में दर्द है वह सिपाही स्वयम् उसे पिलाने के लिये जल खींचने लगा। इतने ही मे उस सन्यासी ने जो किया उसे देख कर मैं अवाक रह गया!

ज्यों ही वह सिपाही कुयें से जल खींचने लगा कि सन्यासी ने फुर्ती से उसे धक्का देकर कुयें मे गिरा दिया। उसके कुयें में गिरते ही चट अपने गेरुये वस्त्र के नीचे से कटार निकाल वह दूसरे सिपाही पर झपटा। एक बलवान शत्रु को

सामने देख तुरंत वह सिपाही अपनी जान लेकर वहाँ से भागा।

उसके भागते ही सन्यासी ने उस बँधे हुये मनुष्य की अपनी उसी कटार द्वारा क्षण भर मे हथकड़ी और बेड़ी काट डाली। इस प्रकार वह मनुष्य को बंधन से मुक्त कर बात की बात में वहाँ से उसको अपने साथ ले नौ दो ग्यारह हुआ। यह सब केवल एक क्षण में हुआ। मैं भी ऐसी अघटित घटना देखकर अवाक रह गया।

तदन्तर गाँव के लोगों ने उस सिपाही को कुयें से निकाल कर बाहर किया। मैंने भी यह सब तमाशा देख वहाँ से हट अपना मार्ग लिया।

इतना कह चुकने के पश्चात् चन्द्रपाल ने फिर सुभद्रा को संबोधित कर के कहा—यहाँ आने पर जब मैंने तुम्हारे मुँह से तुम्हारे पति के फाँसी होने का हाल सुना तो अनुमान से निश्चय किया कि हो न हो जिस मनुष्य को सन्यासी ने सिपाहियों से रक्षा की थी वे ही तुम्हारे पतिदेव हों।

सुभद्रा ने चन्द्रपाल की इन बातों को सुनकर एक ठंढी साँस ली, फिर बोली—"भैया! तुम्हारे ऐसा कहने से मुझे भी यही संदेह हो रहा है। मेरी आत्मा भी कह रही है कि अवश्य मेरे पति देव अभी जीवित हैं। ईश्वर तुम्हारी वाणी को सत्य करे। नहीं तो मेरे भाग्य मे तो दुख लिखा ही है।"

चंद्रपाल ने कहा—बहिन! दुखी मत हो, ईश्वर की इच्छा हुई तो तुम्हारे पतिदेव तुम्हें जीवित मिलेंगे।

इतने में बाहर से यह कहते हुये एक स्त्री ने उस स्थान पर जहाँ चन्द्रपाल और सुभद्रा आपस मे बातचीत कर रहे थे प्रवेश किया "हाँ, हाँ, उमानाथ अभी जीवित है। कल उनसे मेरी भेंट हुई थी। उन्हीं का संदेश कहने के लिये मैं यहाँ आई हूँ। सुभद्रा। धीरज धरो, अभी नहीं, परन्तु कुछ दिन मे वे तुम्हें दर्शन देंगे।"

मुहम्मद हुसेन खाँ की रक्षा।

कोलाहल सुनकर सन्यासी ने शीलावती को वहीं बैठ जाने को कहा और स्वयम् उधर ही जाकर यह देखने का निश्चय किया कि देखें, क्या माजरा है। थोड़ी दूर आगे जो बढ़ा तो क्या देखा कि एक व्यक्ति पर तीन तीन आदमी मिलकर एक साथ ही आक्रमण कर रहे हैं। आक्रमण करने वालों के वेष भूषा से सन्यासी ने झट समझ लिया कि ये और कोई नहीं डाकू हैं जो अकेला पाकर मनुष्यों का माल असबाब छीन लेते हैं। ये रात दिन इसी फ़िराक़ में घूमा करते है कि कहाँ

और किस तरह अपना कार्य्य करें। समय पड़ने पर ये अपना वेष बदल कर इधर उधर छिप जाते हैं जिससे इनको पहचानना कठिन हो जाता है। कभी २ तो ये भिखमंगों का वेष धारण कर गाँव गाँव में घूमते और लोगों के घर का भेद लेते रहते हैं। अवसर देखकर रात के समय चोरी भी कर बैठते हैं। अस्तु।

जब सन्यासी को यह निश्चय हो गया कि ये डाकू ही हैं तो उससे चुप न रहा गया। झट अपने गेरुये वस्त्र के नीचे से एक लपलपाती हुई तलवार निकाल उन आक्रमण करने वालो पर टूट पड़ा। उसका यह करना था कि डाकू जो कुछ माल असबाब पाये थे उसे ही लेकर चंपत हुये। सन्यासी ने भी उनका पीछा करना उचित न समझा।

जब सन्यासी उस मनुष्य के पास पहुँचा जिस पर वे डाकू आक्रमण कर रहे थे तो उसने झट उसे पहचान लिया। यों तो वह दूर से देखने ही पर यह जान चुका था कि वह कोई मुसलमान है परन्तु निकट आने पर क्या देखा कि वह मुसलमान और कोई नहीं, मुहम्मद हुसेन खाँ हैं। यद्यपि सन्यासी उन्हें पहले ही से जानता था परन्तु मुहम्मद हुसेन खाँ स्वयम् उसे न पहचानते थे।

विपत्ति से छुटकारा पाने पर मुहम्मद हुसेन खाँ ने सन्यासी की ओर देखकर कहा—बाबा! अगर आप एकाएक मेरी मदद के लिये न पहुँच जाते तो ये डाकू जरूर मुझे मार डालते। इसके लिये मैं तुम्हारा जी जान से एहसानमन्द हूँ।

सन्यासी ने कहा—परमात्मा तुम्हारा भला करे, अच्छा हुआ जो मैंने तुम्हारे चिल्लाने का शब्द सुना, नहीं तो मुझे क्या मालूम कि विश्रामपुर के सबसे बड़े आलिम फ़ाज़िल और धनी मुसलमान के ऊपर क्या आफत आ पड़ी है।

मुहम्मद हुसेन खाँ को उस सन्यासी के मुख से अपना नाम सुनकर बड़ा आश्चर्य्य हुआ, बोले—बाबा! क्या तुम मुझे पहचानते हो? मैंने तो तुम्हें कभी नहीं देखा है?

सन्यासी ने कहा—सब से बड़े गो-हत्यारे मुहम्मद हुसेन खाँ को भला कौन नहीं पहचानता। मुहम्मदहुसेन खाँ! मैंने अपना धर्म समझकर उन डाकुओं से तुम्हारी रक्षा की, परन्तु तुम हमारे धर्म्म के पक्के दुश्मन और हम हिन्दुओं के परं शत्रु हो। तुम चाहे मुझे न पहचानो, परन्तु मैं तुम्हें अच्छी तरह पहचानता हूँ। बक़राईद के अवसर पर तुम जितनी गायों की कुर्बानी करते हो उन्हें देखकर हम हिन्दुओं का कलेजा टुकड़े टुकड़े हो जाता है, परन्तु क्या करें इस अन्यायी सर-कार के राज्य में हम लोगों का कोई वश नहीं चलता। तुम्हारे कारण रायगंगासिंह न जाने किस जंगल की खाक छान रहे हैं। तुमने जो बहुत से मुसलमानों को लेकर उनके घर पर डाका डाला, उनके माल असबाब को लूटा और उनकी स्त्री तथा लड़की को पकड़ना चाहा, क्या जानते हो कि उसका हाल मुझे नहीं मालूम? हुसेन खाँ! यह मत समझना कि हम लोग चुप हैं। गो-माता की करुण पुकार सुन कर हम हिन्दू कभी चुप

नहीं रह सकते। धर्म्म के कार्य्य में प्राण देने मे हम भय नहीं करते। अब की बार यदि बकराईद के अवसर पर एक भी गाय कटी तो समझ लो कि हम लोग मुसलमानों को पीस कर पी जाने के लिये काफी हैं। हम लोग इस बात के लिये तैयार हो चुके हैं कि रायगंगासिंह की जगह दस रायगङ्गासिंह पैदा हो जायँ। यदि हमलोगों के जीवित रहते तुम जैसे राक्षसों द्वारा गो-माता का पवित्र खून बहे तो हम लोगों को धिक्कार है।

इतना कहकर सन्यासी भेदभरी निगाहों से हुसेन के चेहरे की ओर देखते हुये फिर बोला--हाँ, तो हमने अपना कर्तव्य समझकर उन डाकुओ से तुम्हारे प्राण की रक्षा की परन्तु इस समय तुम मेरे वश में हो, चाहूँ तो इसी क्षण तुम्हें मारकर, तुमने हम लोगो के साथ जो जो अन्याय किये है उनका बदला चुका लूँ। यदि तुम भाग कर अपनी जान बचाना चाहो तो ऐसा करना भी तुम्हारे लिये असंभव है। परन्तु नही, हम, तुम्हारे ऊपर तलवार नहीं चला सकते। विपत्ति मे देख बदला लेने का विचार मन में लाना भी धर्म्म के विरुद्ध है। इसलिये मै इस समय छोड़ देता हूँ परन्तु इतना याद रक्खो कि हमारी तुम्हारी फिर भेंट होगी। उसी समय तुम को इस बात का भी पता चल जायगा कि हमारी इस तलवार मे कितना बल और हृदय मे हिन्दू धर्म्म के प्रति कैसा सच्चा प्रेम है।

इतना कहकर सन्यासी हुसेन खाँ के बोलने की प्रतीक्षा करने लगा।

जिस समय पद्मावती अपने उद्यान में बैठी उस उद्यान की शोभ देख रही थी उसी समय किसी ने पीछे से आकर उसके ऊपर लाल रंग से भरी हुई पिचकारी छोड़ी।

हुसेन खाँ ने काँपते हुये स्वर में कहा--बाबा ! तुमने जो आज मेरी जान बचाई इसके लिये मैं तुम्हें अपनी जान तक देने को तैयार हूँ। बेशक यह सच है कि हम लोग गायों को कत्ल करते हैं और हमारे ऐसा करने से तुम हिन्दुओं के दिल को बेहद तकलीफ होती है मगर क्या करूं हमारा मजहब हमें यही सिखाता है। लेकिन तुम्हारी बातों को सुनकर आज मैंने एक नया सबक़ सीखा है। रायगंगासिंह के घर पर डाका डालने का पाप मेरी आँखों के सामने है। मजहबी जोश में आकर मैं बिना क़सूर गायों को कत्ल करने का हुक्म देता हूँ मगर आज मुझे खुद बखुद अपने मजहब से नफ़रत हो रही है। खुदा करेगा तो तुम लोगों को इसके लिये अब ज्यादे तकलीफ़ और परेशानी न उठानी पड़ेगी। आज से मैं खुद इस बात की कोशिश करूंगा कि गायों की कुर्बानी बन्द कर दी जाये। बोलो, क्या तुम्हारे एहसान का बदला इससे चुक सकता है ?

सन्यासी ने अन्यमनस्क होकर कहा—हुसेन ! यदि तुम इस समय इसे न भी कबूल करो तो भी मैं तुम्हारा किंचित् मात्र भी अनिष्ट करने का विचार मन मे नहीं रखता हूँ। परन्तु यदि तुम जो कुछ कहते हो इसे सच्चे दिल से कहते हो तो फिर आज से हम हिन्दू और मुसलमान भाई भाई की तरह एक दूसरे के गले से मिल सकते हैं।

कहता हूँ। हम मुसलमान ईमान के पक्के होते है। क़सम खा कर कहता हूँ कि आज से गाय की कुर्बानी करना सूअर खाने के बराबर हराम है।

सन्यासी ने कहा—बस, हुसेन! कसम खाने की कोई आवश्यकता नहीं। मुझे तुम्हारी बातों का पूरा पूरा विश्वास है। मैं भी इस बात को कबूल करता हूँ कि मुसलमान क़ौल के सच्चे होते है। अच्छा, अब मेरे साथ आओ। यहाॅ से कुछ दूर पर मैं राय गंगासिंह की पुत्री शीलावती को छोड़ आया हूँ। यहाँ से थोड़ी ही दूर कुसुमपुर एक ग्राम है। उसी गाॅव मे ठाकुर रुद्रसेन शीलावती के मामा हैं। तुम शीलावती को अपने साथ ले जाकर उनके सुपुर्द कर दो। परन्तु देखना, उसे किसी प्रकार का कष्ट न हो। मैं तुम्हारी बातों का विश्वास करके ही उसे तुम्हारे सुपुर्द करता हूँ। यदि किसी प्रकार का धोखा हुआ तो यह मत समझना कि कोई तुम से इसका बदला लेने वाला नहीं है।

हुसेन खाॅ ने कहा—ऐसा मरते दम तक नहीं हो सकता। इतना कहकर वह सन्यासी के साथ चलने को तैयार हो गया।

सन्यासी भी हुसेन खाॅ को ले जिस मार्ग से गया था उसी मार्ग से लौटकर शीलवती के पास आया। शीलावती भी बैठी बैठी सन्यासी के आने का मार्ग देख रही थी।

सन्यासी ने वहाॅ पहुँच कर शीलावती को हुसेन खाॅ के सुपुर्द किया और एक बार फिर हुसेन खाॅ को वही चेतावनी

देकर वहाँ से जाने लगा । जाती बार उसने शीलावती को संबोधित करके कहा—"बहिन ! तुम बेधड़क हुसेन खाँ के साथ चली जाओ। ये तुम्हें जरूर तुम्हारे मामा के घर पहुँचा देंगे। मैं भी तुम्हारी चिन्ता में रहूँगा, डर की कोई बात नहीं।"

इतना कहकर वह सन्यासी चला गया। इधर हुसेन खाँ भी शीलावती को ले कुसुमपुर की ओर चले। रास्ते में दोनों में इस प्रकार बातें होने लगीं।

हुसेन—बेटी ! तुम्हे आज इस हालत मे देखकर मुझे बेहद रंज हो रहा है।

शीला०—तुम्हारी ही वजह से तो हम लोगो की यह दशा हुई।

हुसेन—बेटी ! मैंने बड़ा भारी गुनाह किया। खुदा इसका मुझे न जाने क्या बदला देगा ? बेगुनाह को सताकर मैं खुद किस तरह बेगुनाह बन सकता हूँ ? बेटी मेरा कसूर माफ करो।

शीलावती—यदि तुम हम हिन्दुओ की अटल सम्पत्ति, धर्म्म की मूर्ति गायो की हत्या करना बन्द कर दो तो मैं तुम्हें क्षमा कर सकती हूँ।

हुसेन—मैंने घर जाकर सब से पहले इसी काम के पूरा करने की क़सम खाई है। खुदा करेगा तो अब एक भी गाय के गले पर छुरी न गिरने दूँगा।

इस प्रकार बातें करते करते वे गांव के निकट पहुँच गये। इतने मे उन्हें उसी ओर आता हुआ एक सन्यासी फिर दिखाई पड़ा। शीलावती ने दूर से देख कर ही अचलसिंह को पहचान लिया।

१६

रुद्रसेन की नीचता

जिस गाँव में सुभद्रा रहती है, उस गाँव का नाम है नन्दपुर, नदपुर शंकरपुर से लगभग पाँच मील दूर है। नंदपुर कोई बहुत बड़ा गाँव नहीं परंतु तो भी यहाँ की जनसंख्या कोई कम नहीं है। इस गाँव मे अधिकतर वस्ती हिन्दुओं की है। जो दो एक घर मुसलमान हैं वे भी भय के मारे हिंदुओं से काँपते रहते हैं। तिसपर भी जब से अचलसिह ने सन्यासी का कार्य पूरा करने का वीड़ा उठाया है तब से तो मुसलमानों की ना

मर रही है। उनके उपदेश को सुनकर बहुत से नौजवान हिंदू बालक समय पर मर मिटने के लिये सन्यासी का वेष धारण कर रहे हैं। जगह २ से यही पुकार सुनाई पड़ रही है कि अबकी बार हिंदू सन्यासी मुसलमानों के बकराईद के त्योहार के अवसर पर यदि कुर्बानी न बंद हुई तो भीषण कांड उपस्थित किये बिना न रहेंगे।

यहाँ पर हम पाठकों को थोड़ा सा हाल अचलसिंह का भी दे देना उचित समझते हैं। शीलावतीकी माँ सुरुचि दो बहन थीं एक तो स्वयम् सुरुचि और दूसरी विरुचि। विरुचि का व्याह मन्मथपुर के ठाकुर जितेन्द्रसिंह से हुआ था। जिस समय अचलसिंह दस वर्ष के थे उसी समय उनके पिता का देहान्त हो गया। पति के मर जाने पर विरुचि ने किसी किसी भाँति लड़के का पालन पोषण किया। जब अचलसिंह कुछ बड़े हुये तो अपनी मौसी सुरुचि के घर आने जाने लगे। सुरुचि अचल-सिंह को अपने पुत्र से भी बढ़कर मानती थी। अचलसिंह भी अपनी मौसी से बहुत प्रेम करते थे। कभी २ तो वे महीनों सुरुचि के पास ही रह जाया करते। इस तरह अचलसिंह की शिक्षा भी राय गंगासिंह के घर पर ही हुई। जिस समय राय-गंगासिंह ईद के झगड़े के कारण घर से गायब हो गये उस समय अचलसिंह अपने ही घर थे। उनकी अवस्था भी उस समय लगभग बाईस वर्ष थी। जब उन्होने यह हाल सुना तो उनके हृदय मे अपने मौसा का पता लगाने और उनकी सहा-

यत्न करने की इच्छा हुई। यह निश्चय कर वे माता को अकेली छोड़ घर से बाहर हो गये। अन्त में उनका परिश्रम सफल हुआ। एक दिन उसी नदी के किनारे जिसका वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं एक सन्यासी से उनकी भेंट हुई। यह सन्यासी और कोई नहीं राय गंगासिंह ही थे। इसके पश्चात् राय गंगासिंह ने अचलसिंह को जो उपदेश देकर भेजा उसे हम पहले ही सुना चुके है। यह अचलसिंह के ही परिश्रम का फल था कि गोरक्षा के लिये हिन्दुओं की नस नस मे खून दौड़ने लगा। ज़िला कलक्टर भी हिन्दुओं का यह दृढ़ निश्चय देखकर काँप उठे। अकेले नन्दपुर गाँव से ही सैकड़ों सन्यासी इस कार्य के लिये तैयार हो गये।

इसी नन्दपुर के उत्तर ओर थोड़ी ही दूर पर एक कुटी भी देख पड़ती है। यह कुटी केवल घास पात की बनी हुई है। इसके अगल बगल कुछ फूल पत्ते और तुलसी के वृक्ष भी लगे हुये हैं। देखने मे तो यह कुटी बहुत सामान्य जान पड़ती है परन्तु इसकी सुव्यवस्था और सफाई देख कर कोई यह नहीं कह सकता कि इसमे का रहने वाला कोई सामान्य व्यक्ति होगा। अस्तु,

रात आधा से अधिक बीत चुकी थी। सब लोग अपनी २ चारपाई पर पड़े खुर्राटे ले रहे थे। किसी ओर से किसी प्रकार का शब्द नहीं सुनाई पड़ता था। चन्द्रमा के डूब जाने के कारण अब पृथ्वी पर अंधकार फैल गया था। आकाश के तारे लाख

प्रयत्न करने पर भी उस अंधकार को दूर करने में असमर्थ थे। शांति ऐसी थी कि वृक्षों की पत्तियाँ तक भी नहीं हिलती थीं।

इसी समय एक स्त्री उसी कुटी में बैठी पूजा कर रही है। पूजा की सामग्री उसके सामने रक्खी है। वह स्त्री पूजा समाप्त कर चुकने के पश्चात् अपने आराध्य देव का ध्यान मानो कर रही है। सामने टिमटिमाता हुआ घी का दीपक जल रहा है।

इस स्त्री की अवस्था लगभग चालीस वर्ष है, परन्तु चेहरे पर अभी झुर्रियाँ तक भी नहीं पड़ी हैं। उसका सारा शरीर सुडौल और वर्ण गौर है। देखने से कोई देवी जान पड़ती है। शरीर पर कोई आभूषण नहीं है, केवल हाथ में दो दो चूड़ियाँ हैं उसके शरीर की आभा से मिलकर उसका श्वेत वस्त्र उस दिये की रोशनी में ऐसा जगमगा रहा है मानो चाँदनी रात में कोई कुमुदिनी खिली हो।

इतने में उस स्त्री को किसी मनुष्य के उस कुटी के भीतर प्रवेश करने की आहट मालूम हुई। उसका ध्यान भंग हो गया और लगी कुटी के द्वार की ओर देखने। इतने मे उसने क्या देखा कि एक मनुष्य उसके सामने आकर खड़ा हो गया। शरीर पर गेरुये रंग का वस्त्र, बायें हाथ में कमण्डल और दहिने हाथ में एक चमटा था। शरीर खुला और पैर नंगा, देखने में ऐसा जान पड़ता था कि वह कोई सन्यासी है। ऊँचाई मे वह छ फीट से कम न था। बदन बलिष्ठ और अंग प्रत्यंग से पुष्ट जान पड़ता था।

आगन्तुक को देखकर हमारी वह पूजा करने वाली स्त्री चौंक उठी, परन्तु फिर साहस करके उसने सन्यासी से पूछा "महात्मन्! क्या मैं इस समय एकाएक तुम्हारे इस स्थान पर आने का कारण पूछ सकती हूँ? तुम्हारे आ जाने से मेरी पूजा में विघ्न पड गया। महात्मा समझ कर भला मैं तुम्हें इससे अधिक और क्या कह सकती हूँ!" इतना कह कर वह स्त्री चुप हो गई और लगी एकटक उसी सन्यासी की ओर देखने।

सन्यासी जो अब तक चुप था शांति भंग करते हुये अपनी गंभीर वाणी से बोला—देवि! मैं तुम्हें यह सुसंवाद सुनाने आया हूँ कि शीलावती अपने मामा रुद्रसेन के पास पहुँच गई, अब उसे किसी प्रकार का भय नहीं है अतः अब उसकी चिता छोड़ दो और अपने बचने की चिन्ता करो क्योंकि मैंने सुना है कि उस दुष्ट जगदीशचन्द्र के सिपाही चारो ओर घूम २ कर तुम्हारा और शीलावती का पता लगा रहे हैं।

सन्यासी के चुप हो जाने पर वह स्त्री ध्यान पूर्वक उस के मुख का निरीक्षण करने लगी। उसे उस सन्यासी के पह-चानने मे क्षण भर का भी विलंब न हुआ, पहचानते ही उसके पैरों पर गिर पड़ी और बोली—"देव! इस वेष में देखकर मैंने तुम्हें पहले न पहचाना। आज इतने दिनो पर दर्शन देकर तुमने मुझ अभागिनी को कृतार्थ किया। तुम्हारे ही मिलने के लिये मै यह पूजा कर रही थी, सो यह पूजा आज समाप्त हुई।

परमात्मा ने मुझ दुखिया की विनती स्वीकार कर ली। नाथ! अब मुझे और कुछ न चाहिये।

सन्यासी ने नेत्रों से आँसू गिराते हुए कहा—कुछ चिन्ता मत करो यह तो समय का फेर है। धर्म के मार्ग में सदा काँटे रहते हैं किसी उत्तम कार्य के पूरा करने के लिये विपत्तियों का झेलना अनिवार्य है। इतने दिनों तक मेरा तुम्हारे पास न आने का भी कारण था। मैंने अपना कार्य पूरा कर लिया अब यदि मै पकड़ भी लिया जाऊँ तो कोई चिन्ता नहीं, मेरी जगह पर मेरे ही जैसे और भी कार्य करने वाले पैदा हो गये हैं। अब यदि मुझे चिता है तो केवल तुम्हारी। अभी ईश्वर को न जाने कब तक तुम्हें इस टूटी फूटी झोपड़ी मे रखना मंजूर है।

स्त्री ने कहा—नाथ! अभी हम लोगों की विपत्तियो का अन्त नहीं हुआ। मैंने सुना है कि बेटी शीलावती जगदीशचन्द्र के हाथ पड़ गई। वह दुष्ट उसे अनेक ताड़नायें दे देकर तुम्हारा और मेरा भेद जानने को चिन्ता मे लगा है।

सन्यासी ने आश्चर्य से कहा--देवि! क्या यह सत्य कहती हो? यह अशुभ समाचार तुमने कहाँ सुना? क्या अचलसिंह मुझे धोखा देगा? मुहम्मद हुसेन खाँ के हाथों से लेकर उसने शीलावती को तुम्हारे मामा के सुपुर्द किया क्या यह बात उसने मुझसे झूठ बना कर कही? ऐसा तो हो नहीं सकता। उस पर मुझे पूरा विश्वास है। उसी के परिश्रम का फल है कि आज मुझ चारो ओर सन्यासी ही सन्यासी देख पड़ते है, फिर

शीलावती उस दुष्ट जगदीशचन्द्र के हाथ कैसे पड़ी ? क्या तुम्हारे भाई ने मुझे धोखा तो नहीं दिया ? क्या वह भी उसी जगदीशचन्द्र से मिल तो नहीं गया ? क्या बात है ?
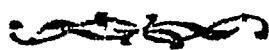
स्त्री ने कहा—हाँ नाथ ! यही बात है। सुनती हूँ कि रुपये के लालच मे पड़कर रुद्रसेन ने शीलावती को जगदीशचन्द्र के हवाले कर दिया। जब से मैंने यह हाल सुना तभी से चित्त व्याकुल है। हाय ! हम लोगों के जीते जी बेटी को इतना कष्ट भोगना पड़ता है।

सन्यासी ने कहा—देवि ! धीरज धरो। इस प्रकार दुखी होने से काम न चलेगा। मैं उस दुष्ट जगदीशचन्द्र को शीघ्र इसका बदला दूँगा। इस समय मुसलमानों से बढ़कर वही मेरा शत्रु हो रहा है इसी रात को मैं शंकरपूर के लिये प्रस्थान करूँगा। रुद्रसेन ने भी मुझे निस्सहाय समझ रक्खा है। यदि चाहूँ तो इसी रात्त उसका शिर लाकर तुम्हारे सामने रख सकता हूँ, परन्तु वह तुम्हारा भाई है इस नाते उसे छोड़ देता हूँ। अब विलंब करने का समय नहीं अतः तुम मुझे विदा करो, मेरी भी एक बार जगदीशचन्द्र से मुकाबला करने की इच्छा है।

स्त्री ने कहा—नाथ ! विपत्ति मे ही शत्रु और मित्र की पहचान होती है दुःख मे न तो कोई किसी का भाई होता है और न बन्धु। मैं तुम्हें शत्रु के घर मे जाने की किस प्रकार अनुमति दूँ परन्तु यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो मुझे रोकने

का भी अधिकार नहीं है। यदि हो सके तो समय २ पर दर्शन दिया करना, बस मुझे और कुछ नहीं कहना है।

सन्यासी ने कहा—देवि ! धीरज धरो। इतना कहकर वह उस कुटी से बाहर हो गया। वह स्त्री भी एक टक उसी कुटी के द्वार की ओर देखती रही। तदन्तर वह फिर पूर्ववत् नेत्र बंद कर लगी ध्यान करने। अस्फुट शब्दों मे उसके मुँह से सुनाई पड़ा—"हे परमात्मा ? भला हम लोगो ने ऐसा कौन सा पाप कर्म किया है कि मित्र भी हमारे शत्रु हो रहे हैं।" इतने में उसे ऐसा सुनाई पड़ा मानो बाहर से कोई कह रहा है, "विपत्ति मे मित्र भी शत्रु हो जाते है।"

१७

चन्द्रपाल का कैद होना

चन्द्रपाल को सुभद्रा के यहाँ रहते लगभग दो महीना बीत गया। इतने दिनो मे उचित व्यवस्था होने के कारण उसके शरीर का सारा घाव भी अच्छा हो गया। अब वह पहले ही की भाँति हृष्ट-पुष्ट हो गया।

एक दिन जब कि वह सन्ध्या समय बाहर मैदान मे अकेला बैठा था उसके मन में एकाएक उस सुन्दरी का स्मरण हो आया जिसने उस अर्द्धरात्रि मे उस सुनसान जंगल मे उसकी

सहायता की थी। उसकी सुन्दर मुखाकृति, कमल के समान नेत्र तथा कम्बु के समान ग्रीवा का स्मरण कर वह बेचैन हो उठा। हृदय मे उस रमणी के एक बार फिर दर्शन करने की लालसा इतनी प्रबल हो उठी कि वह उसके आगे सारे संसार को भूल गया। चित्त इतना उद्विग्न हो उठा कि उसे एक जगह रहना कठिन हो गया, लगा व्याकुल की भाँति इधर से उधर टहलने। बार २ यही सोचने लगा कि कहाँ चलूँ कि एक बार फिर उसका दर्शन हो।

वह इसी चिन्ता मे चूर था कि उसे श्री महादेव जी के उसी मन्दिर का ध्यान हो आया जिसमे उसने उस विपत्ति के समय अपनी रात्रि बिताई थी। यह सोचकर कि संभव है वह सुन्दरी जिस प्रकार उस रात्रि में उस घने जगल मे श्री महादेव जी की पूजा के निमित्त गई थी उसी प्रकार नित्य जाती हो— उसके हृदय मे तब आशा का सञ्चार हुआ। झट निश्चय किया कि उसी मन्दिर मे चल उसके आने की प्रतीक्षा करूं। यदि वह फिर भी पूजा के निमित्त आवेगी तो अवश्य उसका दर्शन होगा।

ऐसा विचार कर चन्द्रपाल बिना कुछ खाये पिये ही उसी जगल की ओर चला। मन्दिर के पास पहुँच कर उसने दूर से ही श्री विश्वनाथ जी को माथा नवाया और मन्दिर के भीतर जा एक कोने मे बैठ उसी सुन्दरी के आने की प्रतीक्षा करने लगा।

इस समय उसके हृदय की क्या दशा थी इसे लिखना कठिन है। ज्यों ज्यों रात अधिक बीतती थी त्यों त्यों उसका मन अधीर हुआ जाता था। पत्ते के खड़कने से भी वह चौक कर लगता था इधर उधर देखने। सारा जंगल भॉय भॉय कर रहा था परन्तु किसी के आने की आहट उसे न मालूम होती थी, और होती कैसे? जिसके लिये बैठा बैठा और एकटक मन्दिर के द्वार की ओर देख रहा था वह बेचारी तो इस समय जगदीशचन्द्र के क़ैद में थी परन्तु चन्द्रपाल को इसका हाल क्या मालूम! वह तो उस सुन्दरी के नाम ग्राम से भी परिचित न था।

इसी प्रकार बैठे २ उसे लगभग आधी से अधिक रात बीत गई। अब वह निराश हो चला। इतने मे उसे किसी के पैर की आहट मालूम हुई। चन्द्रपाल का हृदय धक धक करने लगा। उसने सोचा कि हो न हो यह वही सुन्दरी हो जिसके लिये बैठा २ वह एक २ मिनट गिन रहा था। परन्तु क्षण भर मे ही उसकी सारी आशा निराशा के रूप मे परिणित हो गई।

उसने क्या देखा कि दो मनुष्य आपस मे बात करते चले आते हैं। इनको देख पहले तो चन्द्रपाल के मन मे शंका हुई कि यहाँ भूतों का निवास तो नहीं है परन्तु फिर धीरज धर कर उसी कोने मै बैठा रहा? तदन्तर उसने देखा कि वे दोनो मनुष्य भी उसी मन्दिर के भीतर चले आये। फिर दोनो ने श्री

विश्वनाथ की मूर्ति का स्पर्श किया और तब उनमें से एक बोला—हे विश्वनाथ ! यदि कार्य मे सफलता हुई तो फिर तुम्हारा दर्शन करूँगा। तत्पश्चात् दोनों माथा नवा उस मंदिर से बाहर हुये परन्तु अँधेरा होने के कारण उनमे से चन्द्रपाल को किसी ने न देखा।

चन्द्रपाल उन आगन्तुकों को देख बड़े आश्चर्य मे पड़ गया। वह मनही मन सोचने लगा कि इन लोगों ने कौन सा ऐसा कार्य हाथ मे लिया है कि इतनी रात को इस सूनसान घने जगल के बीच से होकर जा रहे हैं उसके हृदय मे उनका भेद जानने की उत्सुकता बढ़ उठी। उन्हें देख उसके मन मे अनेकानेक भावनायें उठने लगीं। इतना तो उसे निश्चय हो गया कि ये हिन्दू हैं नहीं तो भला श्री विश्वनाथ के दर्शन से इन्हें क्या प्रयोजन! परन्तु वह यह न निश्चय कर सका कि इनके हाथ मे कौन सा कार्य है।

अब वह उस सुन्दरी के दर्शन से निराश हो चुका था। उसके आने का समय कब का ही बीत चुका था। अतः उसने इन मनुष्यों का भेद जानने का निश्चय किया। ज्योही वे मंदिर से निकल कर एक ओर को चले कि चन्द्रपाल भी छिप कर उनके पीछे चला। वे आपस मे बराबर बात चीत करते चले जाते थे, परन्तु धीमी आवाज मे होने के कारण चन्द्रपाल को उनकी बातें स्पष्ट न सुनाई पड़ती थी, हाँ, इतना उसने अवश्य समझ लिया कि वे छिपकर किसी घर मे घुसना चाहते है।

ऐसा करने का उनका क्या प्रयोजन है, यह चन्द्रपाल की समझ मे न आया।

धीरे धीरे वे दोंनो लगभग चार मील दूर गये। चन्द्रपाल भी बराबर उनके पीछे चलता रहा। अब वे दोनों ठहर गये जान पड़ता था कोई राय कायम करने के लिये ही उन दोनों ने ऐसा किया।

थोड़ी देर के पश्चात् वे एक बस्ती की ओर चले। चन्द्र-पाल ने देखा कि एक फाटक के समीप पहुँच कर वे रुक गये। धीरे धीरे फाटक मे धक्का दिया तो जान पड़ा कि फाटक भीतर से बन्द है। जब किसी उपाय से फाटक न खुला तो लगे इधर उधर देखने। अन्त में उन्हे एक खुली हुई खिड़की दिखाई पड़ी परन्तु यह खिड़की पृथ्वी से इतनी ऊँची थी कि वहाँ तक पहुँचना कठिन था। अन्त मे उन दोनों मे से एक ने दूसरे के कंधे पर खड़ा हो किसी २ भॉति अपनी धोती इसी खिड़की मे बॉधी और दूसरे की धोती मे से आधी फाड़ स्वयम् पहन लिया। अब उन दोनों ने उसी धोती के सहारे ऊपर चढ़कर उस खिड़की मे प्रवेश किया। चन्द्रपाल कुछ दूर पर खड़े २ यह सब तमाशा देखते रहे।

इसके पश्चात् उन दोनों ने उस मकान के भीतर जाकर क्या किया यह उन्हें न मालूम हुआ। थोड़ी देर के बाद मकान का फाटक खुला और दो मनुष्य एक स्त्री को लिये हुये उस फाटक से बाहर हुये। चन्द्रपाल ने देखते ही जान लिया कि ये
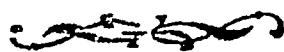
वे ही मनुष्य थे जिनके साथ वह जंगल से वहाँ तक आया था। जान पड़ता था यह स्त्री जिसको वे लिये थे मूर्छित अवस्था मे थी। यद्यपि चन्द्रमा उस समय अस्ताचल को जा चुका था परन्तु इस स्त्री का मुख देखने से ऐसा जान पड़ता था कि मानो पृथ्वी पर कोई दूसरा चन्द्रमा पैदा हो गया हो। उसके मुख के प्रकाश में ही उसके मुख की झलक देख पड़ती थी। इस स्त्री को देखते ही चन्द्रपाल का हृदय धक धक करने लगा उसने सोचा हो न हो यह वही स्त्री हो जिसके देखने के लिये वह व्याकुल था।

फाटक से निकलते ही उन मनुष्यों ने उस स्त्री को ले जल्दी जल्दी उसी ओर कदम बढ़ाया जिधर से वे आये थे। चन्द्रपाल ने भी चाहा कि उनके साथ २ जाकर उनका पूरा पता लें और देखें कि वह स्त्री कौन है और उनका इस प्रकार उसे अपने साथ ले जाने का क्या प्रयोजन है!

वह भी चलना ही चाहता था कि इतने मे शोर हुआ और चारो ओर से आदमी दौड़ते हुये दिखाई दिये। चन्द्रपाल ने सोचा कि विपत्ति उसके ही शिर पड़ना चाहती है। दौड़ कर भागना चाहा कि इतने में सामने से दो तीन आदमियों ने आकर उसे पकड़ लिया। लाख उसने अपने छुडाने का प्रयत्न किया परन्तु उनके सामने उसकी एक न चली। आखिर विवश होकर वह उनका बंदी हो गया। उन मनुष्यों ने भी यह समझ कर कि चोर पकड़ लिया गया, अपना ढूढ़ना बन्द कर दिया।

बेचारे चन्द्रपाल के शिर पर अनायास ही विपत्ति आ पड़ी, लोगों ने ले जाकर उसे एक अँधेरी कोठरी मे बन्द कर दिया। पाठक चद्रपाल को उसी अन्धेरी कोठरी में छोड़ हमारे साथ चलें, देखें वह स्त्री और उसको ले जाने वाले वे मनुष्य कौन हैं? यह तो हम ऊपर ही कह चुके हैं कि नन्दपूर के उत्तर ओर एक टूटी फूटी झोपड़ी है। झोपड़ी मे रहने वाली स्त्री के विषय मे भी हम पहले ही कह चुके हैं। पाठकों ने समझ ही लिया होगा कि यह स्त्री और कोई नही राय गंगासिह की स्त्री सुरुचि है। अस्तु,

उन मनुष्यों ने उस स्त्री को लेकर उसी झोपड़ी के भीतर प्रवेश किया। स्त्री को एक चारपाई पर लिटा स्वयम् पृथ्वी पर बैठ गये। जान पड़ता था सुरुचि उन मनुष्यो को पहले ही से जानती थी। उनकी आवाज सुनते ही झट उठी और दिया जलाया। दिये के प्रकाश मे उन लोगों ने जो उस स्त्री के चेहरे पर दृष्टि डाली तो ठक हो गये। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उनके मुँह से केवल इतना ही शब्द निकला कि "ओफ्, धोखा हो गया।"

१८

फ़ातिमा का सन्यास ।

फ़ातिमा के दिल में उस सन्यासी से जिसने उसको डुबते हुये से बचाया था फिर मिलने की इच्छा बनी रही । आख़िर एक दिन उसी स्थान पर उसकी उसी सन्यासी से भेंट हुई । फ़ातिमा ने बड़ी देर तक नदी के किनारे बैठ कर सन्यासी का उपदेश सुना । उसका वह उपदेश फ़ातिमा के दिल मे ऐसा चुभ गया कि उसने गो हत्या का नाम मिटा देने की कसम खा ली । दूसरे ही दिन उसने भी सन्यासी का वेष धारण कर

लिया। गेरुआ वस्त्र पहन लगी गाँव गांव में घूमने। उसके उपदेश का प्रभाव मुसलमानों पर ऐसा पड़ा कि वे भी गो-हत्या को एक बहुत बड़ा पाप समझने लगे। गऊ क्या किसी भी जीवकी हत्या करना उन्हें मनुष्यत्व के विरुद्ध जान पड़ने लगा। सबने कुर्बानी बन्द करने की क़सम खा ली। उधर मुहम्मद हुसेन खाँ ने भी इस बात का फतवा जारी कर दिया कि कुर्बानी करना मुसलमानी मज़हब के खिलाफ़ है।

हम यह पहले ही कह चुके हैं कि फ़ातिमा सन्यासी के सिखाये हुये उपदेश का घूम २ कर गाँव २ प्रचार करने लगी। एक दिन वह घूमते २ जगदीशचन्द्र के यहाँ जा पहुँची।

वहाँ पहुँच कर उसने जो जगदीशचन्द्र के बैठकखाने में प्रवेश किया तो क्या देखा कि बैठकखाना मनुष्यों से ठसाठस भरा है। सबलोग जगदीशचन्द्र ही की ओर देख रहे हैं। जगदीशचन्द्र एक बहुत बढ़िया मखमली कुर्सी पर बैठे हुक्का पीते जा रहे हैं और सामने देख २ कर कुछ कहते भी जाते है। बगल मे वीरसिंह है। उनसे थोड़ी ही दूर पर एक स्त्री और एक पुरुष हाथ पैर बंधे खड़े हैं। फ़ातिमा ने जो उस ओर दृष्टि डाली तो उस पुरुष को तो उसने न पहचाना परन्तु उस स्त्री को देखते ही पहचान लिया। यह स्त्री उसकी प्यारी सखी शीलावती थी। फातिमा ने यह पहले ही सुन लिया था कि जगदीशचन्द्र ने शीलावती को क़ैद कर रक्खा है यही कारण था कि शीलावती को देख उसे कुछ आश्चर्य न हुआ, परन्तु उसे

इस दशा में देख फातिमा को जो दुख हुआ वह वर्णन नहीं हो सकता।

उसने जगदीशचन्द्र को शीलावती की ओर देख यह कहते हुये सुना, "अगर तू अपने पिता गंगासिंह का भेद मुझसे नहीं बताती तो निश्चय जान कि तुझे मेरे कैद में भूखों मर जाना पड़ेगा। ऐसा तो हो नहीं सकता कि तू अपने पिता के गुप्त-स्थान को न जानती हो परन्तु तू जान बूझ कर उसे बताना नहीं चाहती। अब तक मैंने तुम्हारे साथ बहुत दया दिखाई पर जान पड़ता है बिना सख्ती किये तू सीधे राह पर न आयेगी।"

जगदीशचन्द्र की यह धमकी सुनकर शीलावती ने कहा—"मैं स्वप्न में भी झूठ नहीं बोल सकती परन्तु यदि मैं अपने पिता का पता जानती तो भी क्या तू जानता है कि तेरे डर से तुझे बता कर अपने पिता को कष्ट मे डालती! पापी! मेरे लिये तेरी ये धमकिया व्यर्थ है।"

जगदीशचन्द्र ने क्रोध से कहा—"अब मुझे निश्चय हो गया कि तू इस तरह न मानेगी, अच्छा थोड़ी देर मे देख कि मैं तुझे किस तरह मनाता हूँ।"

इतना कहकर जगदीशचन्द्र ने उस बधे हुये मनुष्य की ओर देखा और फिर कहा—दुष्ट! अब तू बता कि तेरा क्या नाम है? जान पड़ता है कि तू भी गंगासिंह का कोई आदमी है। इसमें सन्देह नहीं कि पद्मावती के विषय में भी तू जानता

है। यदि सारा हाल सच सच नहीं कहता तो जान ले कि तेरी बोटियाँ २ अलग कर दी जायंगी।"

जगदीशचन्द्र की इन कठोर बातों को सुनते ही वह बंधा हुआ मनुष्य जो वास्तव मे चन्द्रपाल थे क्रोध के कारण भस्म हो उठे। जिस सुन्दरी के देखने के लिये वे इतने व्याकुल हो उठे थे उसे ही अपने नेत्रों के सामने इस दशा मे देख उनकी आँखें क्रोध से लाल हो रही थीं। कुसमय जान वे उस सुन्दरी से बोलने का साहस भी न कर सकते थे। शीलावती भी चन्द्रपाल को पहचानती थी परन्तु जब चन्द्रपाल उसकी ओर देखते तो वह लज्जा के कारण अपनी दृष्टि नीची कर लेती। जिस समय जगदीशचन्द्र शीलावती के ऊपर कटु वाक्यो की वर्षा कर रहे थे उस समय चंद्रपाल की भुजायें क्रोध के कारण फड़क उठती थीं। भूखे शेर की भाँति वे जगदीशचन्द्र पर टूटना चाहते थे परन्तु बधे होने के कारण चुप रह जाते थे। जब जगदीशचन्द्र ने उन्हें भी भला बुरा कहा तो क्रोध की सरिता करारों को तोड़कर उमड़ चली। उन्होंने तमक कर कहा—"अरे पापी! बंधे होने के कारण जो चाहे कह ले, यदि एक क्षण के लिये भी मुक्त हो जाता तो तुझे इसका बदला देता।"

जगदीशचन्द्र ने दांतों से ओठ काटते हुये कहा—"अरे, तेरी इतनी बड़ी मजाल? वीरसिंह! ले जाओ इस पापी के शरीर का सेर भर खून निकाल कर मेरे सामने हाज़िर करो और ज़ख्म मे नमक भर दो। इसके लिये यही सज़ा काफ़ी है।"

दो प्रेमियों को एक दूसरे का दुःख कितना असह्य होता है यह मुझे अपने पाठको से बताने की आवश्यकता नहीं। शीलावती ने जिस दिन चन्द्रपाल को उस जंगल मे देखा उसी दिन वह उस पर मुग्ध हो गई। चन्द्रपाल भी शीलावती के कमल-मुख को देखते ही रीझ गये। सोते जागते, उठते बैठते दोनों को एक दूसरे का ध्यान बना रहता था। आज जगदीशचन्द्र के घर मे दोनों की अचानक भेंट हुई, परन्तु वह भेंट ऐसे अवसर पर हुई जब कि एक दूसरे को देखकर ही उनका दुख और भी बढ़ गया था। दोनों ही भीतर ही भीतर मसोस कर रह जाते थे। यद्यपि वे दोनों निकट ही खड़े थे परन्तु एक दूसरे को नेत्र भर कर देख भी न सकता था। जहाँ दोनों के हृदय में एक दूसरे के लिये इतनी कामनायें थीं वहाँ उन्हें प्रेम सम्भाषण का भी अवसर न मिलता था। परमात्मा को यदि दो प्रेमियो को ऐसी दशा में भेंट कराना हो जब कि एक दूसरे की सहायता भी न कर सके तो इससे अच्छा है कि उनकी भेंट ही न हो। प्रेम ऐसी वस्तु है कि मरते समय भी एक प्रेमी दूसरे को सुखी देख स्वयम् सुख से मरता है। अस्तु,

जिस समय जगदीशचन्द्र ने वीरसिंह को चन्द्रपाल का खून निकालने की आज्ञा दी उस समय फातिमा से ऐसा सुनकर चुप न रहा गया, वह आगे बढ़ कर बोली—"जगदीशचन्द्र ! तेरे बराबर पापी इस संसार मे बहुत कम हैं। और नराधम ! द्वेष और स्वार्थ के वश होकर तू भारी से भारी पाप करने को तैय्यार

है। अपने ही भाई राय गंगासिंह को तू अपनी नेक नामी के लिये कैद करवाना चाहता है। जिसने गो-रक्षा और हिन्दू धर्म के बचाने के लिये अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया उसी राय गंगासिंह की लड़की को कैद में रख कर तू अपने स्वार्थ की सिद्धि करना चाहता है। इस बेक़सूर हिन्दू के साथ भी इतनी निर्दयता के साथ पेश आ रहा है। नीच ! तू हम मुसलमानों से भी बदतर है। हम मुसलमान तो नाम मात्र के गो-भक्षक हैं, देखती हूँ तो असली गो-भक्षक तू है। यदि तू गो-भक्षक न होता तो हम मुसलमानों को गो-हत्या करने की हिम्मत भी न पड़ती। अपने मज़हब का इतना बड़ा दुश्मन तो आजतक मैंने अपनी आँखो से देखा भी न था। अगर मेरे हाथों मे इतनी ताक़त होती तो बहन शीलावती को अभी तेरे कैद से रिहा करती। मगर खुदा देखता है, जो जैसा है उसको वैसा फल जरूर मिलेगा। पापी ! जान पड़ता है तुझे उस दुनिया की ख़बर भी नहीं है।"

सन्यासी के वेष मे एक स्त्री को इस प्रकार भला बुरा कहते देख जगदीशचन्द्र के तो होश उड़ गये। उनके मुंह से एक शब्द भी न निकला। जितने लोग वहाँ खड़े थे सब लगे एक टक फातिमा का मुंह देखने। जब जगदीशचन्द्र को होश हुआ तो वे गुस्से से लाल होकर बोले—"जान पड़ता है यह कोई पागल स्त्री है। इसने मुझे बहुत कुछ भला बुरा कहा, पकड़ लो जाने न पावे। इसको भी ख़बर ली जायगी।"

जगदीशचन्द्र के इस हुक्म को सुनकर सिपाही फातिमा को पकड़ने के लिये आगे बढ़ ही रहे थे कि इतने मे शीघ्रता पूर्वक उसी कमरे में एक सन्यासी ने प्रवेश किया। देखने में तो यह सन्यासी था परन्तु इसके दाहिने हाथ मे कमण्डल के बदले एक लपलपाती तलवार थी। सन्यासी बात की बात में जगदीशचन्द्र के पास जा पहुँचा और कड़क कर बोला--"अरे नीच! जिसकी चिन्ता में तू रात दिन लगा है वह राय गंगासिंह मैं ही हूँ, यदि तेरे में सामर्थ्य हो तो मुझे पकड़ ले। मैं चाहूँ तो इसी समय तेरा प्राण ले सकता हूँ परन्तु ऐसा करने से तुझे अपने बुरे दिन देखने को न मिलेंगे। हाँ, आया हूँ तो कुछ चिन्ह तो जरूर दे दूँ।" ऐसा कह कर उसने अपनी तलवार का एक वार जगदीशचन्द्र के दाहिने हाथ की अँगुली पर किया। अँगुली कट कर पृथ्वी पर नाचने लगी। जगदीशचन्द्र के तो प्राण उड़ गये और वह भय के मारे औंधे मुँह पृथ्वी पर गिर पड़ा।

सन्यासी ने फिर कहा—"पापी को स्त्री पर बल दिखाने मे लज्जा भी नही लगती। नीच! उठता क्यो नहीं! क्या इसी बल पर राय गगासिंह को कैद करवाना चाहता है! यदि मेरे कैद होने ही से तेरी आत्मा को शान्ति मिल सकती है तो ले यह मैं अपनी तलवार रख देता हूँ। मुझे अब कुछ करना बाकी नहीं है। अब तू मुझे क़ैद कर प्रसन्नता पूर्वक सरकार के हवाले कर दे। यदि ऐसा करने मे तुझे संतोष हो तो मैं सहर्ष कैद होने के लिये तैय्यार हूँ।

इतना कहकर सन्यासी ने अपनी तलवार पृथ्वी पर रख दी। जगदीशचंद्र की आज्ञा पाकर सिपाहियों ने उन्हें निहत्था जान गिरफ्तार कर लिया। उनके गिरफ्तार हो जाने पर फातिमा पकड़ कर कैद कर ली गई।

इस प्रकार राय गंगासिंह के गिरफ्तार हो जाने पर जगदीशचन्द्र फिर अकड़ कर कुर्सी पर बैठ गये।

१६

दुष्कर्म का परिणाम

मुहम्मद हुसेन खाँ ने जब यह सुना कि जगदीशचन्द्र ने उसकी लड़की फ़ातिमा को अपने यहाँ कैद कर रक्खा है तो उसके क्रोध का पारावार न रहा। वह क्षण क्षण यही सोचने लगा कि किस तरह फ़ातिमा को उसके बंधन से मुक्त करे और साथही साथ जगदीशचन्द्र को इसका बदला भी दे।

उधर जब अचलसिंह ने यह सुना कि उसके मामा रुद्रसेन ने उसकी मौसेरी बहिन शीलावती को जगदीशचन्द्र के हवाले

कर दिया तो वह मनही मन रुद्रसेन की इस नीचता पर जल भुन कर ख़ाक हो गया। उसने सोचा कि किसी न किसी तरह उससे इसका बदला लेना जरूरी है। अस्तु,

हम यहाँ पर अपने पाठकों को रुद्रसेन का भी कुछ हाल दे देना उचित समझते हैं। रुद्रसेन का विवाह अचलपूर के ठाकुर शंकरसिंह की लड़की से हुआ था। उसकी स्त्री का नाम था विमला। पति के घर आने के पाँच वर्ष पश्चात् विमला की मृत्यु हो गई। जिस समय विमला मरी उस समय उसकी गोद में केवल एक छ महीने की बालिका थी वह भी माता की मृत्यु के पश्चात् दो ही चार दिन मे चल बसी। रुद्रसेन के पिता माता पहले ही मर चुके थे। स्त्री की मृत्यु के पश्चात् अब उनके घर में कोई उन्हें भोजन बनाकर देने वाला भी न था। दूसरे विवाह के लिये लाख कोशिश किया परंतु तीन २ चार २ हजार मोल होने लगे, लाचार उन्हें चुप रह जाना पड़ा।

रुद्रसेन का ननिहाल उसी गांव में था जहाँ चंद्रपाल के पिता आनंद शंकर का घर था। रुद्रसेन कभी कभी अपने मामा के घर जाया करता था और घर का अकेला होने के कारण महीनो वहीं रह जाया करता था।

हम यह पहले ही कह चुके है कि आनन्द शंकर ने वृद्धावस्था मे अपनी दूसरी शादी कर ली। भला युवती और दुश्चरित्र वाली स्त्रियाँ क्या कभी अपने बूढ़े पति से संतुष्ट रह सकती हैं। आनन्द शंकर को उसका यह हाल देखकर भी आंख

बंद कर लेना पड़ा। एक दिन अकस्मात् रुद्रसेन से उसकी भेंट हुई। बस; उसी दिन से दोनों मे अनुचित सम्बन्ध हो गया।

जब छिप छिप कर उन दोनो की कामलिप्सा पूरी न हो सकी तो एक रात को रुद्रसेन उसे अपने साथ लेकर नौ दो ग्यारह हुये और जाकर अपने घर कुसुमपूर मे रक्खा। जब तक मन मे उमंग थी तब तक तो दोनों की खूब पटती रही परन्तु अन्त में धीरे धीरे खटपट हो चली। इस खटपट होने का एक कारण भी था।

रुद्रसेन की स्त्री विमला की एक बड़ी बहन कमला थी। कमला का व्याह भी पास ही के एक गॉव में हुआ था। कमला की एक लड़की थी जिसका नाम था भुवन मोहिनी। इस समय उसकी अवस्था लगभग पन्द्रह वर्ष थी। एक बार वह अपनी माता के साथ रुद्रसेन के घर आई। चार छः दिन रह कर कमला तो अपने घर चली गई, परन्तु भुवन मोहिनी रुद्रसेन ही के यहॉ रह गई।

धीरे धीरे रुद्रसेन की स्त्री को रुद्रसेन के प्रति यह सन्देह होने लगा कि भुवन मोहिनी से उससे गुप्त प्रेम तो नहीं है। रुद्रसेन भुवन मोहिनी के साथ एकान्त मे बैठकर घंटो बात चीत किया करते थे इसीसे इसका यह सन्देह और भी दृढ़ होता जाता था। इधर तो उसे रुद्रसेन के प्रति यह सन्देह था और रुद्रसेन भी अपनी उस रखेली के चरित्र से असन्तुष्ट रहते थे, यही कारण था कि दोनो मे अनबन हो गई।

रुद्रसेन की उस रखेली का उन पर जो भुवन मोहिनी के विषय में सन्देह था वह अकारण भी न था या भुवन मोहिनी का जैसा नाम था वैसी ही वह सुन्दर भी थी। उसकी मन्द मुसुकान और तीखी तथा चंचल चितवन अनायास ही युवकों के हृदय पर वज्रपात करती थी। उसके काले केश नागिन बनकर हँसते थे। उसके मुख की आभा की चकाचौंध में देखने वालों के मन-मानिक दिन दोपहर ही लुट जाते थे। वह भवन मोहिनी वास्तव मे कविवर्णन के समान ही सुन्दर थी। उसके उठते हुये उरोजो पर मानो कामदेव का सिहासन विराजमान था, जिसकी ओर एक बार ऑख उठाकर देख देती वह उसे देखते ही मूर्ति की भॉति स्थिर हो जाता। अस्तु।

भुवन मोहिनी की सुन्दरता देख रुद्रसेन का मन भी हाथ से जाता रहा। उनके हृदय में भले बुरे का ज्ञान न रहा और लगे भुवन मोहिनी को अपने वश मे करने का प्रयत्न करने।

हम यह पहले ही कह चुके हैं कि उसी कारण रुद्रसेन और उनकी स्त्री में रात दिन खटपट होने लगी। वह खटपट यहॉ तक बढ़ी कि मार पीट की नौबत आ गई। एक दिन उसने अपने मन मे विचारा कि "जब तक मेरा यौवन था तब तक तो ये मुझ· पर लट्टू थे परन्तु जब मै अपने उस रत्न को खो चुकी तो साथ ही साथ इनका यह दिखावटी प्रेम भी जाता रहा। अब इनके साथ रहकर जीवन बिताना भी एक भार है। इससे तो अच्छा है चलकर अपने विवाहित पति की शरण लूँ, यदि वे मुझे

क्षमा कर देंगे तो मेरा लोक परलोक दोनों बन जायगा। उनकी सेवा से अवश्य मेरे सारे पाप मिट जायंगे।" यह सोचकर एक दिन वह चुपके से विलासपूर के लिये चल खड़ी हुई।

इधर रुद्रसेन ने भुवन मोहिनी को अपने वश में करने का लाख प्रयत्न किया परन्तु जब वह किसी प्रकार उनसे राजी न हुई तो उस दुष्ट ने उस बेचारी को अपने वश में जान उसके साथ बलात्कार करने का निश्चय किया। यह देख भुवन मोहिनी भी किसी प्रकार वहाँ से बचकर निकल भागने का अवसर ढूँढ़ने लगी, परन्तु इसी चिन्ता में पड़ गई कि घर जाकर क्या बहाना करेगी।

एक दिन जब रात करीब डेढ़ घड़ी बीत चुकी थी रुद्रसेन ने भुवन मोहिनी के साथ बलात्कार करने की ठान ली। घर में तो कोई दूसरा था नहीं अतः उसने निर्भय हो भुवन मोहिनी का हाथ पकड़ लिया। पहले तो भुवन मोहिनी उस कामी से अपना हाथ छुड़ा भागना चाहती थी परन्तु जब उसके लाख प्रयत्न करने पर भी हाथ न छूटा तो वह बड़े जोर से चिल्ला उठी, यह देख रुद्रसेन ने एक हाथ से उसका मुह बंद कर लिया वह उसको पृथ्वी पर गिरा छाती पर चढ़ बैठा कि एकाएक किसी ने पीछे से बड़े जोर से उसकी पीठ पर एक घूसा मारा। घूसे के लगते ही वह औंधे मुँह पृथ्वी पर गिर पड़ा। भुवन मोहिनी भी चट अलग होकर खड़ी हो गई।

आगन्तुक ने क्रोधपूर्वक रुद्रसेन की ओर देखकर कहा—

अरे नीच ! यह बालिका तेरी कौन है जो तू इसके साथ बला-त्कार करना चाहता है ! पापी । मैं तुझे ऐसा भ्रष्ट आत्मा नहीं जानता था । अच्छा बता मेरी वह थाती कहाँ है जो मैं तुझे सौंप गया था।

इतना कहकर वह आगन्तुक रुद्रसेन के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा ।

रुद्रसेन ने काँपते हुये स्वर में कहा—बेटा अचलसिंह मुझे क्षमा करो ।

अचलसिंह ने रुद्रसेन को धिक्कारते हुए कहा—पापी ! तेरी हत्या करना भी तेरे लिये काफी दण्ड नहीं है। ले जब तक जीता रहे तब तक अपने इस पाप को याद रख, ऐसा कह अचलसिंह ने ऐसी तलवार मारी की रुद्रसेन की नाक कटकर पृथ्वी पर गिर पड़ी । नाक के कटते ही रुद्रसेन नाक दबाकर बैठ गया, चेहरा लोहू लुहान हो गया ।

अचलसिंह ने कहा—"बस, तेरे लिये यही दंड है ।" इतना कह उसने भुवन मोहिनी की ओर देखकर कहा—"देवि, अच्छे सवसर पर आकर मैंने तेरे सतीत्व की रक्षा की । अब तुम शीघ्र यहाँ से अपने घर चली जाओ ।"

भुवन मोहिनी ने कहा-यदि तुम न आते तो आज मेरी रक्षा होना असम्भव था। भला मैं अकेले यहाँ से इस रात मे कहाँ जा सकती हूँ ? जिस प्रकार तुमने मेरे सतीत्व की आज इस पापी के हाथ से रक्षा की उसी प्रकार अपना मन और शरीर मैं तुम्हें

अर्पण करती हूं । मेरे पास सिवा इसके तुम्हारे उपकार का बदला देने को और क्या धरा है ! अब वो तुमने जिस प्रकार मेरी लज्जा की रक्षा की उसी प्रकार इस शरीर की रक्षा करो।" इतना कहकर वह सतृष्णा नेत्रो से अचलसिहकी ओर देखने लगी ।

अचलसिंह ने कहा--"सुन्दरी ! अच्छा तो चलो शीघ्र इस नरकागार से निकल चलो।" इतना कहकर भुवन मोहिनी को ले उस मकान से बाहर हो गया।

२०

वीरसिंह का धोखा

हम यह ऊपर कह चुके हैं कि सुरुचि की झोपड़ी में दो मनुष्यों ने एक स्त्री को लाकर चारपाई पर लिटा दिया। परन्तु जब उन्होंने उस स्त्री के चेहरे को दिये के प्रकाश में देखा तो चौंक उठे थोड़ी देर के पश्चात् उनमे से एक बोला—"हम लोगों का सारा परिश्रम निष्फल हुआ। अच्छा, तो इसे यहीं छोड़कर चलो एक बार फिर शीलावती की खोज में चलें। बिना कार्य्य पूरा किये चित्त में चैन नहीं।" इतना कहकर वह अपनी जगह से

उठ खड़ा हुआ। वह स्त्री जिसे वे उठाकर लाये थे अभी अबतक मूर्छित अवस्था में ही थी।

उन दोनों ने जाते समय सुरुचि से कहा—"देवि! तब तक इस स्त्री को होश में लाने का प्रयत्न करो, ईश्वर करेगा तो हम लोग बहुत जल्द लौटेंगे।"

सुरुचि को उनसे कुछ पूछने का समय भी न मिला कि वे दोनों कुटी से बाहर होकर एक ओर को जाने लगे। सुरुचि ने भी जल छिड़क कर उस स्त्री को होश में किया।

जब वे दोनों कुटी से कुछ दूर जंगल की ओर गये तो इतने में सवेरा हो गया। अब उन दोनों में आपस में इस प्रकार बातें होने लगीं।

एक—अचलसिंह! हम लोगों ने बड़ी भारी ग़लती किया। शीलावती को तो हम लोग पहले से ही पहचानते थे परन्तु इतना न निश्चय कर लिया कि जिसे हम लोग चारपाई पर से उठा रहे हैं वह शीलावती ही है या दूसरी कोई स्त्री।

वह जो अचलसिंह ही थे बोले—गलती तो जरूर हुई परन्तु क्या किया जाय। जल्दी का काम ही ऐसा होता है।

पहला—उस पापी रुद्रसेन ने हम लोगों को बहुत बड़ा धोखा दिया नहीं तो यह नौबत काहे को आती।

अचल०—और उमानाथ! अभी तक उस दुष्ट से तुमने इसका कुछ बदला भी न लिया।

उमा०—अभी एक ओर से तो छुट्टी मिले फिर देखा जायगा।

अचलसिंह ने हँसकर कहा--"यह मत समझो कि मैं उस पापी से निश्चिन्त हूँ मैंने उस दुष्ट से इसका बदला ले लिया।"

अभी अचलसिंह की बात समाप्त भी न होने पाई थी कि इतने में उन्होंने क्या देखा कि एक ओर से दो व्यक्ति एक मनुष्य को पकड़े हुये चले आ रहे हैं। यह देखते ही अचलसिंह चुप हो गया। उन दोनों ने निश्चय किया कि इनका भेद जानना जरूरी है, छिपकर देखना चाहिये कि ये मनुष्य कौन हैं और उस बँधे हुये मनुष्य को लेकर कहाँ जा रहे हैं। ऐसा विचार कर दोनों एक पेड़ की आड़ मे छिप गये।

जब ये मनुष्य पास आये तो हमारे अचलसिंह और उमानाथ ने क्या देखा कि वह बँधा हुआ मनुष्य और कोई नहीं सन्यासी के वेष में हमारे राय गंगासिंह ही हैं। इनके हाथों मे बेड़ियाँ पड़ी हैं और कमर से भी एक रस्सी लगी है। उसी रस्सी को पकड़े आगे आगे वीरसिंह और पीछे पीछे एक दूसरा सिपाही चल रहा है। वहाँ से रायपूर का थाना लगभग पांच मील दूर था। जान पड़ता है ये लोग उसी थाने की ओर जा रहे हैं।

जब हमारे उन दोनों छिपे हुये मनुष्यों ने यह देखा तो वे बड़ी चिन्ता में पड़ गये। यह समझ कर कि राय गंगासिंह पकड़ लिये गये, उनके शरीर का सारा बल इस तरह जाता रहा जैसे सूर्य्य के अस्त होने पर दिन का लोप हो। अब तो उन्हें शीलावती का ध्यान भी न रहा। लगे मन ही मन इस बात की चिन्ता

करने कि किस प्रकार अपने उत्साही सेनापति राय साहब को उन मनुष्यों के बंधन से मुक्त करें।

यद्यपि वे दोनों वीरसिंह और उसके साथ वाले सिपाही से युद्ध करने के लिये कम न थे परंतु ऐसा सोच कर कि कहीं और मनुष्यों के आ जाने पर वे भी न पकड़ लिये जायँ उन्होंने किसी दूसरी ही युक्ति से काम निकालने का निश्चय किया।

इसी विचार में बैठे २ वे आपस मे कुछ देर तक बात चीत करते रहे।

पाठक अब हमारे वीरसिंह और उस सन्यासी राय गंगा-सिंह का हाल सुनें! यह हम पीछे ही कह चुके हैं कि जब राय साहब ने अपनी तलवार रख दी तो उनको जगदीशचंद्र के सिपा-हियों ने गिरफ्तार कर लिया। राय गंगासिंह के पकड़े जाने पर जगदीशचन्द्र मन ही मन इतने प्रसन्न हुये कि मानो आज ही सरकारने उन्हें राय की पदवी दी हो। जिस राय गंगासिंह के पकड़ने के लिये वे रात दिन चिन्ता में थे उन्हीं राय गंगासिंह को अनायास पाकर उनकी प्रसन्नता का पारावार न रहा। अब उन्होंने सोचा कि कब रायसाहब को सरकार के सुपुर्द कर सर-कार के यहाँ नेकनामी हासिल करें। परन्तु हमारी सरकार भी ऐसी बेवकूफ नही कि ऐसे ही देशद्रोही काँटों से एक दूसरा कांटा निकाल फिर उसे भी दूर न फेक दे। अस्तु उन्होंने राय गंगासिंह को वीरसिंह के हवाले किया। वीरसिंह भी रायसाहब को ले रायपूर की ओर चले।

वीरसिंह और उनके साथ का सिपाही राय गंगासिंह को लिये चले ही जा रहे थे कि इतने में सामने से उन्हें एक आदमी दौड़ता हुआ उन्हीं की ओर आता दिखाई पड़ा। उसने हाँफते हुये पास पहुँच कर बड़ी ही कातरवाणी से वीरसिंह की ओर देखकर कहा—"बचाओ, बचाओ, बहुत से डाकू जगदीशचन्द्र की पुत्री पद्मावती को लिये इसी जंगल में होकर भागे चले जा रहे हैं।" इतना कहकर वह लगा व्याकुल की भांति वीरसिंह की ओर देखने।

उस मनुष्य के मुंह से पद्मावती का नाम सुनते ही वीरसिंह चौंक उठे। उसी रात को पद्मावती घर से गायब हुई थी अतः उन्हें उस मनुष्य की बातों पर विश्वास करने में कोई आपत्ति न हुई। पद्मावती के घर से लापता होने पर वीरसिंह को जो दारुण दुख हुआ था—वैसा किसी दूसरे और को न हुआ था। पद्मावती के लिये वे उसी प्रकार व्याकुल थे जिस प्रकार पानी के बिना मछली। पद्मावती को डाकुओं से छीनने के लिये उनकी भुजायें फड़क उठीं, उन्हें राय गंगासिंह का और साथ ही साथ अपने कर्तव्य का किंचित्मात्र भी ध्यान न रहा। अस्तु, उन्होंने शीघ्रता से उस आदमी से पूछा "किधर?" और राय साहब को अपने साथी के हवाले कर उस आदमी के पीछे जंगल की ओर दौड़ चले। थोड़ी ही देर में वे जंगल में घुसते हुये दूर तक चले गये।

उनके चले जाने पर वह सिपाही राय गंगासिंह को लिये

खड़ा खड़ा उनके आने की प्रतीक्षा करने लगा। इतने में उसकी ओर एक दूसरा आदमी भी उसी प्रकार हाँफता कांपता दौड़ता हुआ आया। इस आदमी ने भी आते ही उस सिपाही से कहा--"जल्दी चलो, डाकू मिलकर वीरसिंह को मारना चाहते हैं। अकेले वीरसिंह चारो ओर से डाकुओं से घिर गये है।"

उस सिपाही को भी उसकी बातों पर विश्वास हो गया। वीरसिंह को विपत्ति में जान उनकी रक्षा के हेतु जाना उसने अपना कर्तव्य समझा और यह कहकर कि "तब तक तुम इस आदमी की हिफाजत करो" वह भी उसी ओर को दौड़ा जिधर वीरसिंह को लेकर वह आदमी गया था।

जब वह सिपाही भी जंगल मे चला गया तो उस आदमी ने जिसको कि सिपाही रायसाहब को सुपुर्द कर गया था कमर से एक पैनी कटार निकाल रायसाहब के हाथों की बेड़ियाँ काट दी। और उन्हें बंधन से मुक्त कर बोला—रायसाहब जल्दी यहाँ से भाग चलो, ऐसा न हो विलंब करने पर हम लोग फिर पकड़ लिये जायँ।

राय गगासिंह ने आश्चर्य मे होकर कहा—उमानाथ! तुम लोगों की इस चालाकी की मैं हृदय से प्रशंसा करता हूँ। बिना किसी प्रकार के खून खराबा किये ही तुम लोगों ने अपना काम कर लिया। जान पड़ता है अभी मुझे और कुछ करना भी बाकी है।

इतना कह कर उमानाथ रायगंगासिंह को लेकर बात की बात मे वहाँ से गायब हो गये।

इधर अचलसिंह भी वीरसिंह को भुलावा देकर उसी जंगल में छोड़ एक ओर को चंपत हुये। जब वीरसिंह को इधर उधर ढूँढ़ने पर भी उन डाकुओं का पता न लगा तो वे परेशान होकर फिर अपने उसी स्थान पर लौट आये जहाँ उन्होने अपने साथी की देख रेख मे राय गंगासिंह को छोड़ दिया था। जब वहां पर भी किसी को न देखा तो बड़े आश्चर्य्य में पड़ गये।

इतने में उन्हें दूसरी ओर से आता हुआ उनका साथी सिपाही भी दीख पड़ा। जब उन्होंने सिपाही के मुँह से सारा हाल सुना तो अपनी मूर्खता पर बड़े लज्जित हुये। फिर सिपाही को एक ओर भेज रायगंगासिंह का पता लगाने के लिये वे दूसरी ओर चले।

२१

पुत्र की भेंट

जिस स्थान पर ऊपर के परिच्छेद की यह घटना घटित हुई वहाँ से सुरुचि का झोपड़ा बहुत दूर न था। वीरसिंह रायगंगासिंह को ढूढ़ते ढूँढ़ते वहीं जा पहुँचे तो उन्हें इस बात का सन्देह हुआ कि हो न हो उनका कैदी इसी झोपड़े में कहीं छिपा हो। ऐसा मन में विचार वे उसी झोपड़े की ओर चले परन्तु उस झोपड़े के द्वार पर बैठी हुई एक स्त्री को देख कर वे एकाएक चौंक पड़े। यह स्त्री और कोई नहीं उनकी प्रेम-प्रतिमा

पद्मावती ही थी। पद्मावती को पहचान कर बोले--"यह क्या पद्मावती, तू यहाँ कैसे आई और यह झोपड़ा किसका है ?"

पद्मावती वीरसिंह को देखते ही अपने स्थान से उठ खड़ी हुई और बोली,--मुझे यह क्या मालूम कि यह झोपड़ा किसका है, हाँ इतना अवश्य जानती हूँ कि इसमें एक स्त्री है जिसके प्रति मुझे असीम श्रद्धा उत्पन्न हो रही है। मैं यहाँ कैसे आई और मुझे इस स्थान पर ले आने वाला कौन है यह हाल भी मुझे नहीं मालूम। जिस समय मैं अपनी चारपाई पर पड़ी पड़ी सो रही थी उसी समय मुझे ऐसा मालूम हुआ कि दो मनुष्य मेरे पास आये और मुझे अपनी विशाल बाहुओं में उठा कर चलने लगे। मैं भय के कारण मूर्छित हो उठी। इसके बाद का हाल मुझे बिल्कुल नहीं मालूम। जब मेरी मूर्छा भंग हुई तो मैंने इसी झोपड़ी में इसी स्त्री को मुझे पंखा झलते हुये पाया।

वीरसिंह ने कहा--जान पड़ता है तुम्हारे पिता ने जो राय गंगासिंह की पुत्री शीलावती को अपने यहाँ कैद कर रक्खा है उसी का यह फल है।

इतने में सुरुचि जो भीतर थी दो मनुष्यों की बातचीत सुनकर झोपड़ी के बाहर निकल आई। बाहर आने पर उसने जो वीरसिंह के चेहरे पर दृष्टि डाली तो उसके बायें गाल के नीचे एक काला तिल देख उसका हृदय उछलने लगा, नेत्रों से वीरसिंह के प्रति न जाने क्यों स्नेह की सरिता उमड़ उठी, लिलाट

पसीने से भींग गया और वह लगी एकटक वीरसिंह के मुंह की ओर देखने। उसे ऐसा जान पड़ने लगा मानो उसने वीरसिंह को कहीं देखा हो। उसका एक लड़का आठ नौ वर्ष की अवस्था में घर से लापता हो गया था जिसको कि माता पिता ने यह सोचकर संतोष कर लिया था कि नदी में डूबकर मर गया होगा। उस लड़के के बायें गाल के नीचे भी एक ऐसा ही तिल था जिसकी याद सुरुचि को भूली न थी। उसके हृदय मे यह सन्देह पैदा हुआ कि हो न हो यह मेरा ही बालक हो। ऐसा विचार मन मे पैदा होते ही उसने वीरसिंह से पूछा--"बेटा! तुम्हारा घर कहाँ है और तुम्हारे पिता का क्या नाम है?"

वीरसिंह को भी सुरुचि के प्रति देखते ही श्रद्धा उत्पन्न हो गई, बड़े ही प्रेम से बोले--"माता! मुझे मेरे माता पिता का हाल नहीं मालूम। इस समय तो मैं जगदीशचन्द्र के घर को ही अपना घर समझता हूँ। यह सुन्दरी जिसे मैं अपने सामने खड़ी देखता हूँ उन्हीं जगदीशचन्द्र की पुत्री है।"

जब सुरुचि ने सुना कि वीरसिंह को उनके माता पिता का हाल भी नहीं मालूम तो उसे और भी निश्चय हो गया कि वीरसिंह उसी का प्यारा इकलौता बेटा है, बोली--"बेटा! क्या तुझे यह मालूम है कि जगदीशचन्द्र ने तुझे कहाँ पाया।"

वीरसिंह ने कहा-हाँ, सुनता हूँ उन्होंने मुझे हबशियों के हाथ से खरीदा था। इतना तो मुझे भी स्मरण है कि कुछ आदमी

मुझे मिठाई खिलाकर अपने साथ ले गये तब से मै उन्हीं के साथ रहने लगा।

वीरसिंह की बातें सुनते ही सुरुचि के स्तनों में दूध आ गया, बोली--"बेटा ! मेरा हृदय कहता है कि मैं ही तेरी माता हू"। तेरे ही जैसा मेरा एक बालक आठ नौ वर्ष की अवस्था में खो गया था। हम लोग उसे मरा समझने लगे। उसके भी बायें गाल के नीचे तुम्हारे ही जैसा एक काला तिल था। बेटा ! तुम्हीं मेरे खोये हुये रत्न हो।"

सुरुचि की इन बातों को सुनते ही वीरसिंह का हृदय प्रेम से उमड़ पड़ा बोले--"आज मुझे अपनी पूज्य माता का दर्शन हुआ इससे बढ़कर मेरा भाग्य और क्या हो सकता है ? यद्यपि मुझे इसमे सन्देह नहीं परन्तु फिर भी मुझे इसका विश्वास कैसे हो कि तुम ही मेरी माता हो ?"

सुरुचि ने कहा,--"बेटा तुम्हारी दाहिनी कॉख और दहिने जंघे के नीचे भी ऐसे ही दो तिल हैं। यदि तुम्हें मेरी बातों का विश्वास न हो तो उन्हे देखकर अपना सन्देह दूर कर लो।

वीरसिंह ने जो कॉख और जंघे के नीचे देखा तो सुरुचि की बात को सच पाया। प्रेमाकुल होकर सुरुचि के पैर पकड़ लिये और बोले--"क्या मैं अपने पिता का नाम भी सुन सकता हूँ ?"

ने कहा--'हाँ, बेटा ! तुम्हारे पिता का नाम राय

गंगासिंह है, वही राय गंगासिंह जिन्हें जगदीशचन्द्र कैद करवाने की चिन्ता में हैं।"

पिता का नाम सुनते ही वीरसिंह चौंक उठे, उनकी भुजायें फड़क उठीं, बोले--"वही राय गगासिंह जिनको कैद कर मैं अभी २ थाने की ओर ले जा रहा था? वही वीर सन्यासी जिसने गोमाता की रक्षा करके इस संसार मे अमर यश कमाया है? हाय! माता मैं बड़ा पापी हूँ! मेरे रहते तुम्हें इस झोपड़ी मे रहना पड़ता है, मुझे सौ सौ बार धिक्कार है! पापी जगदीशचन्द्र का नमक खाकर मुझे भी अधर्म के कार्य में हाथ वंटाना पड़ा। माता मुझे क्षमा करो।"

सुरुचि ने वीरसिंह के माथे पर हाथ फेरते हुये कहा--"वेटा! इसकी चिन्ता मत करो, आज हम लोगों की खोई हुई अटल सम्पति हम लोगों को मिल गई बस इसी से हम लोगों का सारा दुःख जाता रहा।"

पद्मावती खड़ी खड़ी सुरुचि और वीरसिंह की बातों को सुनती रही। माता और पुत्र की इस आकस्मिक भेंट को देखकर उसके भी आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वीरसिंह और सुरुचि में अभी इसी प्रकार बातें हो ही रही थीं कि एक ओर से राय गंगासिंह, उमानाथ, और अचलसिंह आते हुए दिखाई दिये। वीरसिंह रायगंगासिंह को देखते ही प्रेममग्न हो गये और दौड़ कर यह कहते हुये उनके पैरों पर गिर पड़े कि "पिता! मेरा अपराध क्षमा करो। मैंने तुम्हारा पुत्र होकर तुम्हारे ही

साथ घोर अन्याय किया। हाय! मुझसे बढ़ कर पापी दूसरा कौन होगा?"

वीरसिंह को इस प्रकार कहते और पैर पर गिरते देख राय साहब के आश्चर्य का ठिकाना न रहा और वे लगे एक-टक सुरुचि की ओर देखने। उमानाथ और अचलसिंह भी यह देख आश्चर्य में पड़ गये।

जब सुरुचि ने राय गंगासिंह से सारा हाल कहा तो उन्होंने प्रेम से गदगद हो वीरसिंह को उठा गले से लगा लिया। सब लोग यह अघटित घटना देख स्तम्भित से हो थोड़ी देर तक चुपचाप खड़े रहे।

तदनन्तर राय साहब ने पद्मावती की ओर देख कर कहा--"बेटी! तुम्हें यहाँ सकुशल देख मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हें यहाँ किसी प्रकार का भय नहीं, मैं तुम्हें बहुत जल्द तुम्हारे पिता जगदीशचन्द्र के पास भेजने का प्रबन्ध कर दूँगा।"

पद्मावती ने शिर नीचा किये हुये कहा--"मुझे कुछ भी चिन्ता नहीं। आपको मैं अपने पिता से भी बढ़कर समझती हूँ। आज मेरा भाग्य भी उदय हुआ जो आप लोगों का दर्शन हुआ।"

तत्पश्चात् वीरसिंह ने राय गंगासिंह की ओर देख कर कहा--"पिता जी! आज मेरे समान सुखी इस संसार में दूसरा कोई नहीं। मेरी इच्छा है कि आजही मैं अपने उस घर को देखूं जिसकी पुण्यभूमि में मेरा जन्म हुआ है। एक बार उस स्थान का दर्शन कर अपने नेत्रों को सफल करूँ।"

राय गंगासिंह ने गद्गद् होकर कहा—"बेटा! जिस समय उस घर में तुम्हारा जन्म हुआ था उस समय से और आज से उसमें बहुत बड़ा अन्तर है। आज उस मकान में अकेले जाने पर भय पैदा होता है। शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं बेटा! आज उसमें न तो मनुष्यों का वह कोलाहल है और न वह शान बान। सारा मकान भाँय भाँय कर रहा है।"

वीरसिंह ने कहा—"मेरे लिये वह फिर भी किसी पुण्यक्षेत्र से कम नहीं। पिता! मैं एक बार चलकर उसी मकान को देख अपने नेत्रों को तृप्त करूँ।"
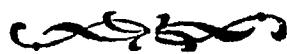
हम यह कहना भूल गये कि राय गंगासिंह के मकान के भीतर उसी अन्धकार पूर्ण कोठरी में से जिसका वर्णन हम ऊपर कर आये हैं एक सुरंग थी। वह सरंग भीतर ही भीतर चल कर उस घने जंगल में उसी टीले के पास निकलती थी जहाँ हम लोग एक बार राय गंगासिंह को सन्यासी के वेष मे देख चुके हैं। इसी सुरंग से भागकर सुरुचि और शीलावती ने भी अपने धर्म की रक्षा की थी। इस कुटी से जहाँ सुरुचि शीलावती को लेकर कालयापन करती थी, सुरंग का वह द्वार लगभग दो मील दूर था। इसी कुटी से शीलावती नित्य महादेव की पूजा के निमित्त जाती थी। "किसी प्रकार गो-हत्या बंद हो" इसी लिये उसने नित्य महादेव की पूजा करने का व्रत धारण किया था। अस्तु,

वीरसिंह की इन बातों को सुनकर राय गंगासिंह ने कहा—

"अच्छा बेटा! यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो चलो मैं तुम्हें अपना वह गुप्त मार्ग भी दिखा दूँ जिसमें से होकर मैं वहाँ आया जाया करता हूँ। दूसरे खुल्लम खुल्ला चलने मे मुझे इस बात का भय भी है कि कहीं मुझे कोई पकड़ न ले। मेरी ही खोज मे सरकार के बहुत से गुप्तचर चारो ओर घूम रहे हैं।"

राय साहब की इस बात को सुनकर सब लोग उनसे सहमत हो गये। पद्मावती को भी राय साहब का घर देखने की इच्छा हुई। अतः उसने भी उन लोगो के साथ चलने के लिये अपनी इच्छा प्रकट की। अस्तु।

यह तै हो जाने पर राय साहब, वीरसिंह, अचल सिंह और उमानाथ तथा सुरुचि और पद्मावती सब के सब उसी जंगल से होकर सुरंग के द्वार पर पहुँचे। तत्पश्चात् राय साहब ने सबको लेकर उसी सुरंग में प्रवेश किया।

२२

सरकार की नीति

हम यह ऊपर कह चुके हैं कि मुहम्मद हुसेन-खाँ ने जब अपनी बेटी फ़ातिमा के कैद हो जाने का हाल सुना तो वह लगा जगदीश-चन्द्र पर दाँतों अंगुली काटने। क्रोध के कारण वह लाल हो गया और इस चिन्ता में पड़ा कि किस प्रकार जगदीशचन्द्र का सर्वनाश हो। वह कोई सामान्य व्यक्ति न था। सब मुसलमान उसकी आज्ञा पर मर मिटने को तैयार थे। वह जो कुछ कहता उसी को सब अपना मजहब समझ प्रसन्नता पूर्वक

स्वीकार कर लेते। एक दिन उसने अपने पड़ोस के सारे मुसलमानों को एकत्र किया। सब के सामने कहा--"भाइयो! मेरी लज्जा तुम्हारे हाथ है। एक दिन मैंने तुम लोगों को राय गंगासिंह के घर पर डाका डालने को कहा था और तुम लोगों ने खुशी २ मेरा कहना मान लिया था। आज मैंने फिर तुम लोगों को एक ऐसे ही काम के लिये बुलाया है। उस दुष्ट जगदीशचन्द्र ने मेरी लड़की को अपने यहाँ कैद कर रक्खा है और मैं उससे इसका बदला लेना चाहता हूँ। जब वह दुष्ट अपने मज़हब और अपने मज़हबी भाई का नहीं हुआ तो भला वह हम लोगों का कब हो सकता है? मैं राय गंगासिंह को उससे लाख दर्जा अच्छा समझता हूँ वह अपने मज़हब पर कुर्बान होने वाला अपनी कौम का सच्चा गुलाम है। ऐसे दुश्मन को दुश्मन समझना हम लोगों की बड़ी भारी ग़लती है, हम लोगों का तो गर्ज़ है कि उससे सबक़ सीखें। उसके घर पर डाका डाल कर हम लोगों ने बहुत बड़ा गुनाह किया—मगर मैं आज पहले से ज्यादा समझदार हूँ। इस दुष्ट जगदीशचन्द्र को इसकी बेइमानी और दग़ाबाज़ी का बदला देना लाज़िमी है। अच्छा सुनो, मै तुम लोगों से क्या चाहता हूँ—मेरी राय है कि उस पापी के घर पर डाका डालकर उसका सारा माल असबाब लूट लिया जाय और फ़ातिमा को उसके कैद से रिहा किया जाय। मैने तै कर लिया कि अपनी तलवार से उसका खून चीखूंगा। बोलो, तुम लोगों की क्या राय है?"

इतना कहकर मुहम्मद हुसेन खाँ चुप हो गया। उसके चुप होते ही सब मुसलमानों ने एक स्वर से कहा—"जरूर हम लोग तैयार हैं।" अस्तु।

उसी रात को मुहम्मद हुसेन खाँ ने बहुत से मुसलमानों को लेकर जगदीशचन्द्र के घर पर डाका डाल दिया। जिस समय, मुसलमानों ने उनके घर को घेरा उस समय जगदीशचन्द्र अपने खास कमरे में बैठे हुक्का पी रहे थे। उनको इस विपत्ति का स्वप्न में भी अनुमान न था।

जगदीशचन्द्र बाहर शोरगुल सुनकर चारपाई से उठने ही वाले थे कि इतने में उनके मकान का फाटक टूट गया और मुहम्मद हुसेन खाँ बहुत से मुसलमानों को लेकर भीतर घुस गये। मकान के भीतर पहुँचते ही वे चट जगदीशचन्द्र के कमरे में जा पहुँचे। जगदीशचन्द्र यह हाल देख अपनी रक्षा के लिये खूंटी पर लटकती हुई तलवार लेने के लिये आगे बढ़ ही रहे थे कि इतने मे मुहम्मद हुसेन खाँ ने लपक कर उन पर वार किया। अभी वे सँभल भी न पाये थे कि कई मुसलमानों ने पहुँच कर उन्हें पृथ्वी पर गिरा दिया। थोड़ी ही देर में जगदीशचन्द्र ने मुहम्मद हुसेन खाँ को अपनी छाती पर बैठा हुआ पाया।

मुहम्मद हुसेन खाँ ने गुस्से में लाल होकर कहा—"नीच! अ तूने मेरी लड़की को कहाँ छिपाया है, नहीं तो अभी तेरी मुस हूँ।"

जगदीशचन्द्र का भय के मारे बुरा हाल था। उन्होंने काँपते हुये स्वर में कहा—"मुझे छोड़ दो, मैं अभी चलकर फ़ातिमा को तुम्हारे हवाले कर देता हूँ। मेरा क़सूर माफ़ करो।"

मुहम्मद हुसेन खाँ ने कहा—"क्या मैं तुझे ऐसे ही छोड़ सकता हूँ? तेरे जैसे पापी को इस दुनियाँ में रहने देना भी गुनाह है। तूने राय गंगासिंह के साथ जैसा बुरा सलूक किया है उसका बदला भी तुझे मैं ही दूँगा।"

जगदीशचन्द्र ने गिड़ गिड़ा कर कहा—"मुझे मत मारो, जो कहो मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ। लो यह उस कैद-खाने की कुंजी है जिसमे मैंने तुम्हारी लड़की को शीलावती और चन्द्रपाल के साथ कैद किया है।" इतना कहकर उसने कुंजी अपनी जेब से निकाल मुहम्मद हुसेन खाँ के हवाले कर दी। मुहम्मद हुसेन खाँ ने कुंजी एक दूसरे मुसलमान को दे उन सब को कैद से रिहा करने का हुक्म दिया। तदन्तर वह फिर जगदीशचन्द्र की ओर देखकर बोला—"इतने से तो तू बेख़ौफ रह कि मैं तेरी जान लेना नहीं चाहता। एक बार के मर जाने से तू फिर किस तरह जानेगा कि अपने ही मज़हब के साथ दुश्मनी करनेवाले की क्या हालत होती है। तेरे लिये यही सज़ा क़ाफी है कि तेरी दोनों आँखे निकाल ली जायँ जिसमें तू अंधा बनकर कुछ दिनों तक जीता रहे।" इतना कहकर मुहम्मद हुसेन खाँ ने बड़ी ही निर्दयता से अपनी तलवार की नोक द्वारा जगदीशचन्द्र की दोनों आँखें निकाल लीं। आँखों के

फूटते ही जगदीशचन्द्र छटपटा कर बेहोश हो गये।

जगदीशचन्द्र के बेहोश हो जाने पर मुहम्मद हुसेन वहां से उठ गया। जब वह दूसरे कमरे में गया तो देखा कि जगदीशचन्द्र की स्त्री सुलोचना भय के मारे बेहोश पड़ी है परन्तु उसने उससे छेड़छाड़ करना उचित न समझा।

तदनन्तर मुसलमानों ने जहाँ तक जिससे बन पड़ा जगदीशचन्द्र के घर में बेडर हो मनमानी लूटपाट की। जब किसी घर का कोई कोना लूटने से बाकी न रह गया तो मुहम्मद हुसेन खाँ ने लूट बन्द करने का हुक्म दिया। उसका हुक्म पाते ही सब मुसलमान फिर एक जगह इकट्ठा हो गये। मुहम्मद हुसेन खाँ ने उसी स्थान पर मुसलमानों के प्रति अपना संतोष प्रकट किया तत्पश्चात वह फातिमा, शीलावती तथा चन्द्रपाल को अपने साथ ले अपने उन मुसलमान साथियों के साथ जगदीशचन्द्र को अपने दुर्भाग्य पर रोता छोड़ उस मकान से बाहर हुआ।

अब हम यहाँ थोड़ा सा हाल अपनी सरकार की नीति के सम्बन्ध में भी दे देना उचित समझते हैं क्योंकि इसी के साथ साथ हमारी इस कथा का अन्त भी होता है। जिला कलक्टर ने जब देखा कि गो-रक्षा के प्रश्न पर हिन्दू जी-जान से तुले हैं और दिन पर दिन अपना दल बढ़ाते जा रहे हैं तो उसने अपनी नीति को बदल देना उचित समझा। इधर शरीफ मुसलमान भी गो-हत्या को मनुष्यत्व के विरुद्ध समझ बन्द

कर देने के प्रयत्न में लग गये। बल्कि जैसा हमने ऊपर कहा है मुहम्मद-हुसेन खाँ ने तो कुर्बानी बन्द करने का फतवा भी जारी कर दिया। मुसलमानों के विचार मे यह परिवर्तन और हिन्दुओं का धर्म कार्य में प्राण देने का यह संकल्प देख सरकार को भी समय के अनुकूल कार्य करना पड़ा। हिन्दुओं के दिल को अपनी ओर खींचने और इस विकट समस्या को हल करने के लिये उसने यह घोषणा कर दी कि हिन्दू मुसलमान के दंगे के कारण जितने हिन्दू कैद कर दिये गये हैं वे मुक्त कर दिये जायँ। राय गंगासिह की भूरि भूरि प्रशंसा करते हुये उसने उन्हें गिरफ्तार किये जाने का हुक्म रद्द किये जाने की आज्ञा दे दी।

इस घोषणा के सुनते ही हिन्दू मारे प्रसन्नता के उछल कूद पड़े। सब की राय साहब के विषय मे सरकार की आज्ञा सुन कर अपार हर्ष हुआ। जिन हिन्दुओं ने रायसाहब का साथ देने का बीड़ा उठाया था उनका तो कहना ही क्या था। "राय गंगासिह की जय" "गो माता की जय" की हर्ष-ध्वनि से आकाश पाताल एक करने लगे। धर्म के कार्य मे प्राण को भी तुच्छ समझने वाले वीरों की विजय हुई।

तत्पश्चात् मुसलमानों ने भी सभा करके यह प्रस्ताव पास किया कि कुर्बानी का रिवाज बन्द कर दिया जाय। यह सुनकर तो हिन्दुओं के आनन्द का ठिकाना न रहा। हिन्दू और मुसलमान दोनों आपस में मारकाट के बदले एक दूसरे से प्रेम के साथ गले मिलने लगे।

इधर अपने ऊपर लगाये हुये अभियोग के रद्द किये जाने
पर राय गंगासिंह फिर विश्रामपूर में आकर अपनी उसी
कोठी में रहने लगे। उनके विश्रामपूर मे आते ही फिर उस
गाँव में वैसा ही आनन्द मच गया। अब उनके उस विशाल
भवन की शोभा और भी बढ़ गई। गो-हत्या के बंद हो जाने
पर उन्हें जैसा आनन्द मिला वैसा दूसरे और किसी को नहीं।
मुहम्मद हुसेन खाँ ने प्रेम पूर्वक शीलावती को ला रायसाहब
के सुपुर्द किया। बहुत दिन के कष्ट झेलने के बाद सुरुचि
और शीलावती फिर अपने उसी घर मे आईं जिसमें वे पहले
रहती थीं। परमात्मा ने रायसाहब को उनके सत्य के मार्ग पर
चलने का बदला दिया और अधर्म के सामने धर्म की जय हुई।
जी सके। अपने कार्य से प्रसन्न होकर सरकार ने उन्हें
लिया। राजा ग त्री से सुशोभित किया। इतने दिनों तक
पाँच महीना के पश्चात् फिर राय गंगासिंह को वही
विवाह कर दिया जैसा कि उसे पहले था, वे उसी प्रकार अपनी प्रजा
कर बड़ी प्रसन्न नाथ सन्या- क दिन बिताने लगे।
पद्मावती के न जब राय
के साथ दाम्पत्य ऊपर क
उधर अचल के साथ आ
मोहिनी के साथ स्वभाव की
और लज्जा के म ने कारण
एक लगा। उनके धीरे धीरे

इसी सुभद्रा की सेवा से प्रसन्न हो अब उसे प्राण की भाँति प्यार करने और हर प्रकार का आराम देने लगी।

राय गंगासिंह ने भी अपनी प्यारी पुत्री शीलावती का न्द्रपाल से पवित्र प्रेम जान उनके साथ उनका व्याह कर ा। इतना ही नहीं बल्कि उन्होंने अपनी जमीदारी का एक ा बड़ा हिस्सा भी शीलावती के नाम लिख दिया। व्याह जाने पर चंद्रपाल शीलावती को ले आनन्दपूर्वक अपने घर रहने लगे। उधर उनके पिता आनन्दशंकर ने भी अपनी स्त्री को फिर अपनी शरण में आई हुई जान उसके लिये एक झोपड़ी बनवा दी और उसके लिये मासिक वेतन नियुक्त कर दिया।

जगदीशचन्द्र अन्धे होने के पश्चात् बहुत दिन तक न जी सके। अपने भाग्य पर रोते हुए उन्हों ने मृत्यु के अंक में स्थान लिया। राजा गंगासिंह ने अपना अच्छा दिन आने के चार पाँच महीना बाद अपने लड़के वीरसिंह का पद्मावती से विवाह कर दिया। जगदीशचंद्र की स्त्री सुलोचना को यह सुन कर बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने अपने पति की सारी जायदाद पद्मावती के नाम लिख दी। पद्मावती भी सुखपूर्वक वीरसिंह के साथ दाम्पत्य सुख का आनन्द लेने लगी।

उधर अचलसिंह का भी कमला की रूपावती पुत्री भुवन-मोहिनी के साथ सम्बन्ध होगया। रुद्रसेन नाक के कट जाने पर लज्जा के मारे न जाने कहाँ चले गये। उनका पता भी न लगा। उनके चले जाने पर उनकी जायदाद की उत्तराधि-

कारिणी भी भुवनमोहिनी ही हुई। अचलसिंह की माता विरुचि को ऐसी सुन्दर बहू मिलने पर जैसा आनन्द मिला उसे लिखना कठिन है।

इस प्रकार जो जिसे चाहता था उसका उसी के साथ परमात्मा ने समागम कर दिया। फातिमा भी सन्यास छोड़ करामात खाँ के साथ रह कर सुख करने लगी।

नन्दपूर गाँव के पास उस टूटी फूटी झोपड़ी में रह कर माता और पुत्री जिस तपस्या को कर रही थीं, जिस व्रत साधन कर रही थीं, वह व्रत उनका आज पूरा हुआ। परमात्मा की कृपा से चारो ओर आनन्द ही आनन्द छा गया। वह झोपड़ी जिसमें सुरुचि और शीलावती रात रात बैठ कर पूजा करती थीं अभी भी उसी स्थान पर विद्यमान है। अभी भी उसके चारो ओर शीलावती के लगाए हुये तुलसी के वृक्ष और फल फूल उसी प्रकार उस स्थान की शोभा बढ़ाते तथा देखने वालों के हृदय में भक्ति-भाव प्रकट करते हैं। परमात्मा करे, इसी प्रकार सर्वदा धर्म की विजय होती रहे।

* समाप्त *

२. वैदिक वर्णव्यवस्था—पुराण, शास्त्र, स्मृति, इति- आदि प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर यह पुस्तक बड़ी ही योग्यता से लिखी गई है। आज तक किसी ने इसके खण्डन का साहस नहीं किया। एक वार पढ़ लेने पर वर्णव्यवस्था का रहस्य मोलूम हो जायगा। मूल्य ॥=) आना।

३. सरल संस्कृत-प्रवेशिका—संस्कृत में प्रवेश करने के करने के लिये इससे बढ़कर अभी तक कोई पुस्तक हिन्दीभाषा में नहीं लिखी गई थी। भाषा में यह एक अद्वितीय पुस्तक है, बूटी है। ८ वर्ष के लड़के को भी यह पुस्तक समझा कर पढ़ा सकते हैं। मूल्य १।) रुपया

४. प्रियतम की भूल—बंगभाषा के प्रसिद्ध लेखक पंचकोड़ी दे के सहधर्मिणी नामक बगला पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। इस पुस्तक में सहधर्मिणी का चरित्र चित्रण बहुत ही योग्यता के साथ चित्रित किया गया है। स्त्री और पुरुष दोनो के लिये यह पुस्तक बहुत ही शिक्षाप्रद है। रोचक इतनी है कि हाथ में लेने पर विना समाप्त किये छोड़ने का जी न चाहेगा। पुस्तक आरम्भ से लेकर इति तक शिक्षाओं से भरी है। हर एक साहित्य प्रेमी को एक बार इस पुस्तक का अवलोकन करना चाहिये। मूल्य सचित्र पुस्तक का १) रुपया।

५. अपराधिनी—यह हरिसाधन मुखोपाध्याय के "अपराधिनी" नामक पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। इस पुस्तक क ... संस्करण हो जाना ही पुस्तक की रोचकता